जनवरी–फरवरी 2019

आई.एस.ओ. 9001: 2008 संगठन
मूल्य: ₹30

भाकृअनुप
ICAR

फल फूल

नववर्ष 2019 का स्वागत

खरबूजे की खेती से खुशहाल हुए किसान

मोती लाल मीणा, धीरज सिंह, महेन्द्र चौधरी और **चन्दन कुमार**
भाकृअनुप-काजरी, कृषि विज्ञान केन्द्र, पॉली-मारवाड़-306401 (राजस्थान)

खरबूजा एक महत्वपूर्ण कद्दूवर्गीय फल है। इसकी फसल ग्रीष्म ऋतु में देश के उपोष्ण भागों में सफलतापूर्वक ली जाती है। राजस्थान में खरबूजे की खेती का विशेष स्थान है। यहां की शुष्क जलवायु इसकी खेती के लिए अनुकूल है। वर्ष 2015-16 के दौरान राजस्थान में खरबूजे का क्षेत्रफल 2116 हैक्टर तथा उत्पादन 11,806 मीट्रिक टन था। राजस्थान में इसकी प्रति हैक्टर उत्पादकता 55.8 क्विंटल है, जो कि बहुत ही कम है। उत्पादकता कम होने का प्रमुख कारण खरबूजे में लगने वाले विभिन्न कीट हैं। गर्मियों में खरबूजे के फलों का सेवन करने से गर्मी से राहत मिलती है। इसके स्वास्थ्यवर्द्धक फलों में पानी के अलावा खनिज पदार्थ और विटामिन भी पाए जाते हैं। इसमें पाए जाने वाला रेशा पाचन तंत्र के लिए काफी लाभदायक है। इसके सेवन से त्वचा में निखार आता है। गर्मियों में लू से बचने के लिए यह लाभदायक है। बच्चों में पेट दर्द होने पर खरबूजे को काले नमक के साथ खिलाने से आराम मिलता है।

राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र में पॉली जिले के हेमावास गांव में ग्रीष्मकाल में खरबूजे की खेती लगभग 250 हैक्टर क्षेत्र में होती है। ये पूर्णत: असिंचित खरबूजे होते हैं। यह गांव बांध से लगा हुआ है। इस बांध का कुल भराव क्षेत्रफल 25.5 फीट है। वर्षा में जब बांध पूर्ण भर जाता है तो रबी फसलों की सिंचाई एवं पॉली जिले को पीने के लिए पानी उपलब्धता इसी बांध द्वारा होती है। फरवरी-मार्च में जब गेहूं की अंतिम सिंचाई के बाद पानी कम होने लगता है तो बांध का पेटाकास्त क्षेत्र खाली होता है। जैसे-जैसे यह क्षेत्र खाली होता जाता है वैसे-वैसे ही मार्च-अप्रैल में खाली जगह पर किसान खरबूजे की बुआई करते जाते हैं। खरबूजे की खेती के लिए मीठे पानी की आवश्यकता होती है।

खरबूजे की बंपर फसल

जब बुआई की जाती है तो पौधे से पौधे की दूरी 1 मीटर तथा लाइन से लाइन की दूरी 1.50 मीटर रखी जाती है। बीज की बुआई एक गड्ढे में करते हैं। इसमें 500 ग्राम रेतीली नदी की मृदा डालकर बीज की बुआई करते हैं। इससे बीज का अंकुरण ज्यादा मात्रा में होता है। बुआई के लिए खरबूजे की उन्नत किस्मों कजरी, दुर्गापुरा यहां मधु का प्रमाणित बीज काम में लिया जाता है। गर्मी में कोई और फसल संभव नहीं होती। खरबूजे गांव के किसानों के लिए आमदनी के सुलभ साधन बन गए हैं। गांव में सिंचाई के लिए कुओं का पानी खारा होने के कारण कृषि योग्य नहीं है। खरबूजे की यह फसल पूर्णत: असिंचित होती है। इसमें किसान संरक्षित खेती का तरीका अपनाते हैं। खरबूजा पूर्णरूप से जैविक होता है, जिसका बाजार में भाव अच्छा मिलता है। प्रतिवर्ष यदि मानसून समय पर आए और बांध भर जाए तो यहां के किसानों की आय में चार गुना बढ़ोतरी हो जाती है। खरबूजे की फसल में बहुत कम खर्चे में ज्यादा आमदनी प्राप्त होती है। गर्मी के मौसम में खरबूजे की फसल को लगभग 44.5^{0} सेल्सियस तापमान की आवश्यकता होती है। मई-जून में यहां का तापमान 43^{0} से 45^{0} सेल्सियस होता है। जितनी अधिक गर्मी होगी खरबूजे के फलों में मिठास उतनी ही अधिक मात्रा में होगी और फसल का उचित दाम कृषकों को मिलेगा।

खरबूजे की बारानी क्षेत्र में उन्नत खेती

इस प्रकार देखा गया कि उन्नत किस्मों को अपनाने से किसानों को प्रति हैक्टर लगभग 2.6 से 2.7 लाख रुपये का शुद्ध लाभ प्राप्त होता है। किसानों का लाभ-लागत अनुपात 5.0 उन्नत प्रदर्शनों का तथा 3.3 के लगभग देशी व किसानों की परंपरागत विधियों से प्राप्त होता है।

खरबूजे की खेती से लाभ लागत

गांव हेमावास, पॉली जिले से मात्र 10 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। यहां पर किसान खरबूजे की असिंचित खेती बांध के अंदर की भूमि में करीब 250 हैक्टर क्षेत्र में करते हैं। किसान बांध का पानी सूखते ही उचित दूरी पर खरबूजे के बीजों की बुआई करते हैं। खरबूजे को प्रति हैक्टर 2.5 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है। बुआई के समय लाइन से लाइन की दूरी 1.5 मीटर तथा पौधे से पौधे की दूरी लगभग 1 मीटर रखी जाती है। सभी कृषक खरबूजे की कजरी लोकल एवं दुर्गापुरा मधु किस्म के बीजों को मार्च में लगाते हैं। मई-जून में फल लगने प्रारंभ हो जाते हैं। कजरी किस्म लोकल किस्म है। इसमें उत्पादन के साथ-साथ मिठास भी ज्यादा होती है। बाजार में इसका भाव ज्यादा मिलता है। बाजार में अधिक मात्रा में इसकी मांग रहती है। यह किस्म मिठास के साथ-साथ

आवरण पृष्ठ III पर जारी

भाकृअनुप
ICAR

फल फूल

वैज्ञानिक बागवानी की
लोकप्रिय द्विमासिकी
वर्ष : 40, अंक : 1
जनवरी-फरवरी 2019

संपादन सलाहकार समिति

1. **डा. अशोक कुमार सिंह** — **अध्यक्ष**
उप-महानिदेशक (कृषि विस्तार)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
2. **डा. सतेन्द्र कुमार सिंह** — **सदस्य**
परियोजना निदेशक
कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
3. **डा. आर.सी. गौतम** — **सदस्य**
पूर्व डीन
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
4. **डा. एस.के. सिंह** — **सदस्य**
निदेशक
राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग
नियोजन ब्यूरो, नागपुर
5. **डा. वाई.पी.एस. डबास** — **सदस्य**
निदेशक (प्रसार)
जी.बी. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
पंतनगर
6. **श्री सेठपाल सिंह** — **सदस्य**
प्रगतिशील किसान
7. **श्री सुरेन्द्र प्रसाद सिंह** — **सदस्य**
कृषि पत्रकार
8. **श्री अशोक सिंह** — **सदस्य सचिव**
प्रभारी, हिन्दी संपादकीय एकक

संपादक : **अशोक सिंह**
संपादन सहयोग : **सुनीता अरोड़ा**

प्रधान प्रोडक्शन अधिकारी : **डा. वीरेन्द्र कुमार भारती**
स. मुख्य तकनीकी अधिकारी: **अशोक शास्त्री**

लेआउट डिजाइन
डा. वीरेन्द्र कुमार भारती
अशोक शास्त्री

व्यवसाय सम्पर्क सूत्र
सुनील कुमार जोशी
व्यवसाय प्रबंधक
दूरभाष: 011-25843657
E-mail: bmicar@icar.org.in
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12
एक प्रति: रु. 30.00 वार्षिक : रु. 150.00

E-mail : phalphul@gmail.com

विषय सूची

संपादकीय आलू उत्पादन की नई तकनीकों का प्रसार जरूरी, अशोक सिंह

3 आवरण कथा

अनूठा फल है लोगनबेरी
राम रोशन शर्मा और श्रुति सेठी

6 नई तकनीक

पॉलीहाउस में टमाटर उत्पादन
मेदनी प्रताप सिंह, नवल किशोर सिंह और हरीश चन्द्र जोशी

8 नवीन

फल प्रसंस्करण से नए उत्पादों का विकास
नीलिमा गर्ग

11 देखभाल

कैसे लगाएं वैज्ञानिक विधि से नये बाग
सतेन्द्र कुमार, सुनील कुमार और राजीव कुमार अग्रवाल

14 प्रबंधन

आलू बीज उत्पादन में उपयोगी नेट हाउस
सुगनी देवी, रत्ना प्रीति कौर, ए.के. सिंह और आर.के. सिंह

17 रोग प्रबंधन

नीबूवर्गीय फसलों की समस्याएं तथा निदान
अनिल कुमार दुबे, विजय शंकर त्रिपाठी और राधा मोहन शर्मा

20 विविधता

प्रमुख खाद्य उपयोगी प्याजवर्गीय फसलें
अश्विनी प्र. बेनके और विजय महाजन

23 नवोन्मेष

चिरौंजी नट प्रसंस्करण की उन्नत विधि
पी.के. निशाद, एस.पटेल, आर.के. नायक और एन.के. मिश्रा

26 संरक्षण
आलू की फसल सुरक्षा
ऋषिपाल, श्वेता सोनी, राजेन्द्र सिंह और एस.के. सचान

32 वैज्ञानिक खेती
हाइड्रोपोनिक्स तकनीक से सब्जी उत्पादन
निशा शर्मा, कौशल कुमार, सोमेन आचार्य, नरेंद्र सिंह और ओ.पी. चौरसिया

34 औषधीय पादप
संकटग्रस्त वनस्पति सर्पगंधा का महत्व एवं खेती
बृजेश कुमार मिश्र, वंदना त्रिपाठी और जी.आर. स्मिता

37 आहार
भारत में आलू की प्रचलित किस्में
जगेश कुमार तिवारी, राजेश कुमार सिंह, विनय भारद्वाज, विनोद कुमार, सतीश कुमार लूथरा, नरेंद्र कुमार पाण्डेय और स्वरूप कुमार चक्रबर्ती

41 जानकारी
जनवरी फरवरी में बागों की देखभाल
राम रोशन शर्मा एवं हरे कृष्णा

आवरण II और III
सफलता गाथा: खरबूजे की खेती से खुशहाल हुए किसान
मोती लाल मीणा, धीरज सिंह, महेन्द्र चौधरी और चन्दन कुमार

डिस्क्लेमर
लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं, उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुन: प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। लेखों में संस्तुत रसायनों का प्रयोग करने से पहले विशेषज्ञों से सलाह अवश्य लें।

संपादकीय

आलू उत्पादन की नई तकनीकों का प्रसार जरूरी

विश्व में आलू को चौथी सर्वाधिक महत्वपूर्ण फसल के रूप में स्वीकारा गया है। मक्का, धान और गेहूं के बाद आलू का ही सबसे ज्यादा उत्पादन होता है। यह जानकर आश्चर्य होगा कि एशिया और यूरोप में विश्व आलू उत्पादन का 80 प्रतिशत आलू पैदा होता है। आलू उत्पादन में चीन का नाम शीर्ष पर है। चीन और भारत मिलकर कुल विश्व आलू उपज के एक तिहाई हिस्से का उत्पादन करते हैं। यहां यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक होगा कि आलू उत्पादकता के मामले में उत्तरी अमेरिका ने 40 टन प्रति हैक्टर के रिकार्ड उत्पादन के साथ सभी देशों को पीछे छोड़ा हुआ है।

भारत जैसे अन्य विकासशील देशों में आलू का महत्व बढ़ती आबादी को पोषक आहार उपलब्ध करवाने की दृष्टि से काफी अहम है। आलू में विटामिन, मैग्नीज, पोटेशियम आदि तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। वर्तमान समय में आलू से तैयार किए जाने वाले ताजा आहार तथा प्रसंस्करित प्रोडक्ट्स की मांग में अत्यंत तेजी से वृद्धि हो रही है। इतना ही नहीं स्टार्च तथा अल्कोहल उत्पादन में भी आलू की उपयोगिता हाल के वर्षों में बढ़ी है। जहां तक इसके औषधीय महत्व का प्रश्न है तो इसके उपयोग से वजन में वृद्धि, किडनी में स्टोन की समस्या से बचाव तथा ब्लड प्रेशर को बढ़ने से रोकने में मदद मिलती है। विश्व परिदृश्य में देखें तो 100 से अधिक देशों में आलू की खेती की जाती है।

आलू के बढ़ते महत्व एवं उपयोगिता को देखते हुए प्रस्तुत अंक में आलू की खेती आधुनिक एवं वैज्ञानिक तरीकों से करने पर आधारित जानकारियां देने का प्रयास किया गया है। जैसे एक लेख में आलू बीज उत्पादन में नेट हाउस के इस्तेमाल पर प्रकाश डाला गया है। इस तकनीक के अंतर्गत टिश्यू कल्चर लैब, नेट हाउस और एरोपोनिक इकाइयों जैसी नियंत्रित सुविधाओं के अंतर्गत कई गुना दर से आलू बीज का उत्पादन/बहुगुणन संभव है। यह भी जानकारी दी गई है कि कैसे नेट हाउस में 3 ग्राम से कम के मिनीकंदों, एरोपोनिक कंदों तथा माइक्रोप्लांट्स को बड़ी संख्या में विकसित कर बीज आलू तैयार किया जाता है।

इसी प्रकार आलू की फसल को नुकसान पहुंचाने वाले विभिन्न कारकों के नियंत्रण की विधियों पर भी इस अंक में चर्चा की गई है। यहां बता दें कि खरपतवारों, कीटों एवं रोगों के प्रकोप के कारण आलू की फसल को 42 प्रतिशत तक नुकसान झेलना पड़ता है। किसानों को इससे बचाने की वैज्ञानिक विधियों के बारे में बताया गया है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अंतर्गत कार्यरत शिमला स्थित केंद्रीय आलू अनुसंधान संस्थान में आलू की उन्नत एवं अधिक पैदावार देने वाली किस्मों का बड़ी संख्या में विकास किया गया है। प्रस्तुत अंक में देश की विभिन्न कृषि पारिस्थितिकियों के लिए उपयुक्त आलू की किस्मों के बारे में विस्तारपूर्वक जानकारी दी गई है, जिनका प्रयोग कर किसान अधिक कमाई कर सकते हैं। उम्मीद करते हैं कि आलू उत्पादक किसानों के लिए यह अंक उपयोगी सिद्ध होगा।

नववर्ष 2019 की मंगलमय शुभकामनाओं सहित।

(अशोक सिंह)

अनूठा फल है लोगनबेरी

राम रोशन शर्मा और **श्रुति सेठी**
खाद्य विज्ञान एवं फसलोत्तर प्रौद्योगिकी संभाग
भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110 012

वास्तव में अधिकांश लोगों ने लोगनबेरी का नाम भी नहीं सुना होगा। इस संकर फल का विकास वर्ष 1881 में हुआ था। यूरोपीय देशों में तो यह फल काफी लोकप्रिय है। भारत में यह फल मात्र अनुसंधान केंद्रों तक ही फिलहाल सीमित है। लोगनबेरी के पौधे अन्य बेरीज के पौधों से अधिक सहिष्णु होते हैं। इन्हें कोई रोग या कीट क्षति नहीं पहुंचाते। फिर भी ये बागवानों में कई कारणों से लोकप्रिय नहीं हो पा रहे हैं। लोकप्रिय न होने के प्रमुख कारण हैं: तुड़ाई एवं सामयिक कार्यों के लिए अधिक श्रम की आवश्यकता और पौधों में कांटों का होना। इसके फल भी पत्तियों में छुपे रहते हैं। इसके अतिरिक्त फल एक साथ नहीं पकते। अत: फलों की तुड़ाई एक बार नहीं हो सकती। यही कारण है कि लोगनबेरी को लोग अपने घर की बगिया में ही लगाते हैं।

लोगनबेरी का विकास ब्लैकबेरी एवं रसभरी के संकरण से हुआ है। उपलब्ध साहित्य से पता चलता है कि इस फल का विकास ब्लैकबेरी की अष्ठगुणित किस्म 'ओंघीबॉग' एवं रसभरी की द्विगुणित किस्म 'रैड एंटवर्प' के संकरण से हुआ। यह एक षटगुणित फल है। इसका विकास सांताक्रूज, कैलिफोर्निया में अमेरिका के प्रसिद्ध जज एवं बागवानी विशेषज्ञ, जेम्स हार्वे लोगन द्वारा किया गया था। ऐसा बताया जाता है कि लोगन अपने घर की बगिया में लगी ब्लैकबेरी की किस्मों से संतुष्ट नहीं थे। इसलिए उन्होंने ब्लैकबेरी की दो किस्मों में संकरण करवाया ताकि ब्लैकबेरी की कोई अच्छी किस्म विकसित हो सके। इस तरह से तैयार पौधों को उन्होंने वहीं घर की बगिया में लगे लाल रसभरी के पौधों के पास में लगाया। ये एक ही समय पुष्पित एवं फलते थे। उनके प्राकृतिक संकरण से कुछ बीज मिले जिन्हें लोगन ने एक खेत में बोया। उन्होंने पाया कि जो पौधे उगे उनमें से 50 ब्लैकबेरी जैसे थे परंतु वे बड़े एवं ओजस्वी थे। इन्हीं का नाम लोगनबेरी रखा गया। लोगनबेरी की मूल संतति को 1897 में यूरोप से आयातित

लोगनबेरी के फल

किया गया। 1933 में इसी से कांटेरहित लोगनबेरी 'अमेरिकन थॉर्नलेस' उत्परिवर्तन द्वारा विकसित की गई।

अब लोगनबेरी को रूबस वंश के साथ कई नए संकरों के विकास के लिए प्रयुक्त किया गया है। इससे ब्यासनबेरी (लोगनबेरी × रसभरी × ब्लैकबेरी), सांतियम ब्लैकबेरी (लोगनबेरी × कैलिफोर्निया ब्लैकबेरी) एवं ओलालीबेरी (ब्लैक लोगन × यंगबेरी) नए संकर फल विकसित हुए हैं।

संघटन, पौष्टिक मान एवं उपयोग

लोगनबेरी के फल प्रोटीन एवं कार्बोहाइड्रेट्स के अच्छे स्रोत माने जाते हैं। इसके फल खाद्य रेशा एवं कैल्शियम, पोटेशियम तथा विटामिन सी के बहुत अच्छे स्रोत हैं (सारणी-1)। अन्य बेरीज के मुकाबले विटामिन सी की मात्रा अधिक होने के कारण ब्रिटिश नेवी के नाविक स्कर्वी रोग से बचाव के लिए 20वीं सदी में इसे विटामिन सी के स्रोत के रूप में प्रयुक्त करते थे। ब्रिटिश लोग 18वीं सदी तक लाइम को विटामिन सी की कमी की पूर्ति के लिए उपयोग करते थे। कोलेस्ट्रॉल न होने के कारण यह दिल के रोगियों के लिए अति उत्तम माने जाते हैं।

लोगनबेरी के फलों को अधिकतर ताजा ही खाया जाता है। कई देशों में इससे कई मूल्यवर्धित उत्पाद जैसे-जैम, जैली, सीरप, सुरा आदि भी विकसित किए गए हैं। कई व्यंजनों में इसे रसभरी या ब्लैकबेरी की जगह प्रयोग कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त लोगनबेरी को विविध प्रकार के पेयों में मिश्रित किया जाता है। 'मिल्क शेक' में सुवास के लिए लोगनबेरी का सीरप प्रयुक्त किया जाता है। कुछ देशों में एल्कोहलिक पेयों में लोगनबेरी का सीरप मिलाकर

वानस्पतिक गुण

लोगनबेरी एक संकर फल है, जिसका वैज्ञानिक नाम, *रूबस लोगनोबेक्स* है। यह रोजेसी कुल के रूबस वंश से संबंध रखता है। इस फल का विकास ब्लैकबेरी एवं रसभरी के संकरण से हुआ है। यह एक षट्गुणित फल है।

लोगनबेरी की लताएं ब्लैकबेरी या रसभरी जैसी होती हैं। ये धरातल पर ड्यूबेरी की तरह रेंगती हुई बढ़ती हैं। इसकी लताएं काफी मजबूत होती हैं। कभी-कभी बिना सिंचाई के भी एक सीजन में 8-10 फीट तक वृद्धि कर जाती हैं। प्रति लता कुल वृद्धि लगभग 40 से 50 फीट तक हो जाती है।

फलों से लदा लोगनबेरी का पौधा

इन पर ब्लैकबेरी की तरह बड़े एवं नुकीले कांटे नहीं होते। बल्कि रसभरी की तरह मुलायम एवं छोटे कांटे होते हैं। पत्तियां गहरी हरी, मोटी एवं रसभरी की पत्तियों जैसी होती हैं। ये फल ब्लैकबेरी के सबसे बड़े फल जैसे होते हैं। इनका रंग पकने पर गहरा चमकीला लाल हो जाता है। फल का सुवास दोनों बेरीज, ब्लैकबेरी व रसभरी के सुवास का मिश्रण होता है, जो सिर्फ इसी फल में पाया जाता है।

सारणी 1. लोगनबेरी के फलों का संघटन एवं पौष्टिक मान (प्रति 100 ग्राम फल)

संघटक	मात्रा	घटक	मात्रा
नमी	84.6 ग्राम	पोटेशियम	145 मि.ग्राम
प्रोटीन	1.52 ग्राम	बीटा-केरोटीन	21 मि.ग्रा.
वसा	0.31 ग्राम	विटामिन बी-3	0.84 मि.ग्रा.
ऊर्जा	55 कि. कैलोरी	विटामिन बी-5	0.24 मि.ग्रा.
कार्बोहाइड्रेट्स	13.02 ग्राम	विटामिन बी-12	26 मि.ग्रा.
खाद्य रेशा	5.3 ग्राम	विटामिन सी	15.3 मि.ग्रा.
कुल शर्करा	7.7 ग्राम	विटामिन 'ई'	0.87 मि.ग्रा.
कैल्शियम	26 मि. ग्राम	कोलेस्ट्रॉल	0 मि.ग्रा.
फॉस्फोरस	20 मि.ग्राम		

ब्लैक लोगनबेरी

प्रसंस्करण के लिए तैयार लोगनबेरी

लोगनबेरी के गुच्छे

पेयों में नया स्वाद एवं सुवास तैयार किया जाता है।

सधाई एवं काट-छांट

लोगनबेरी के पौधे लगभग 10 केन्स (लताएं) पैदा करते हैं। लताएं रसभरी की तरह ऊपर की तरफ वृद्धि न करके ब्लैकबेरी की तरह फैलती हैं। लोगनबेरी को तारों के जालों पर 'पंखे' के आकार में साधित किया जाता है। इसके लिए तारों का 6 फीट दूरी पर लगे खंभों पर जाल बिछाया जाता है और तारों के बीच 12 सें.मी. की दूरी रखी जाती है। धरातल से तार लगभग 3 फीट ऊंचाई पर होने चाहिए। लोगनबेरी की लताओं को जितना चाहे फैलने देना चाहिए, परंतु मानकीकृत ऊंचाई 6 फीट है। इसकी लताओं को दीवार के सहारे भी साधित किया जाता है। पौधों से निकलने वाले प्ररोहों को लगातार हटाते रहना चाहिए। पुरानी लताएं दो वर्ष बाद मर जाती हैं। अत: जब वे रोगी हो जाएं या जब वे तुड़ाई को बाधित करें तो उन्हें काट देना चाहिए।

प्रमुख रोग

पर्ण एवं फल चित्ती: इस रोग में लोगनबेरी की पत्तियों एवं फलों पर छोटी-छोटी बैंगनी चित्तियां विकसित होती हैं। बाद में यह भूरे रंग के धब्बों में बदल जाती हैं। इन रोगों की रोकथाम के लिए ग्रसित लताओं को भूमि के धरातल से काटकर नष्ट कर देना चाहिए। इसके अतिरिक्त किसी कॉपरयुक्त कवकनाशी का उपयोग भी लाभकारी रहता है।

झुलसा: इस रोग में कलियों, गांठों एवं लताओं पर बैंगनी धब्बे विकसित होते हैं। ये बाद में सिल्वर रंग के हो जाते हैं। प्रभावित कलियां एवं शाखाएं बसंत में मर जाती हैं। इस रोग की रोकथाम के लिए प्रभावित भागों को काटकर नष्ट करें एवं कलियां जब 1 सें.मी. आकार की हो जाएं तो किसी कॉपरयुक्त कवकनाशी का छिड़काव करें।

ग्रे मोल्ड: इस रोग में फलों पर ग्रे रंग के धब्बे विकसित होते हैं। कभी-कभी कवक लोगनबेरी में शीर्षारंभी रोग को जन्म देता है। इस रोग की रोकथाम के लिए मृत काष्ठ को काटकर नष्ट करें। लोगनबेरी की कास्त नम एवं आर्द्र स्थानों में न करें। इसके अतिरिक्त यदि झाड़ी बहुत घनी हो तो पौधों में हवा के आवागमन के लिए उचित काट-छांट करें।

खेती

लोगनबेरी की बागवानी के लिए ऐसे स्थान का चयन करना चाहिए, जहां खूब धूप या आंशिक छाया रहती हो। तेज हवाओं वाले क्षेत्र इसकी खेती के लिए अनुपयुक्त होते हैं। इसे लगभग हर प्रकार की मृदा में उगाया जा सकता है। इसके लिए दोमट मृदा सर्वोत्तम मानी जाती है। इसे बड़े-बड़े मिट्टी के पात्रों में भी उगाया जा सकता है।

पादप रोपण 6 से 8 फीट की दूरी पर किया जाता है। रोपण के लिए अक्टूबर के अंतिम सप्ताह से मध्य नवंबर तक का समय उचित होता है।

लोगनबेरी में अधिकतर कार्बनिक खाद ही डाली जाती है। इसे झाड़ी के चारों तरफ 30 सें.मी. के दायरे में डालना चाहिए।

सुवास लिए रसीली लोगनबेरी

लोगनबेरी के पके फल

लोगनबेरी के चमकीले फल

कीट, पक्षी, रोग एवं उनका प्रबंधन

लोगनबेरी के पौधे अन्य बेरीज के पौधों से अधिक सहिष्णु होते हैं। इनके पौधों एवं फलों को कुछ कीट व रोग क्षति पहुंचाते हैं, जिनका विवरण निम्नलिखित है:

प्रमुख कीट एवं पक्षी

पक्षी: लोगनबेरी को सर्वाधिक क्षति पक्षी पहुंचाते हैं। वे अपनी चोंच से पके फल को खा जाते हैं। पक्षियों से रोकथाम के लिए झाड़ी के ऊपर जालीदार नेट लगाना चाहिए।

एफिड: पत्तियों से रस चूसकर एफिड उन्हें क्षतिग्रस्त करते हैं। एफिड की रोकथाम के लिए किसी सर्वांगी कीटनाशी का प्रयोग करना चाहिए। इसके अतिरिक्त गेंदे के पौधों का रोपण भी लाभकारी होता है।

पादप प्रवर्धन

लोगनबेरी के नए पौधे का प्रवर्धन बीज एवं शिरा व साधारण दाब कलम की विधियों द्वारा किया जाता है। प्राकृतिक तौर पर लोगनबेरी स्वयं ही प्रवर्धित होती रहती है।

परिपक्वता, तुड़ाई एवं उपज

लोगनबेरी के पौधे में 2 माह बाद फल लग जाते हैं। इसके फल, ब्लैकबेरी एवं रसभरी से पहले (मई के प्रारंभ में) पकना शुरू हो जाते हैं। यही कारण है कि इस फल का बाजार में अधिक मूल्य मिल जाता है। फलों में जब लाल की बजाय गहरा-बैंगनी रंग विकसित हो तभी इन्हें तोड़ना चाहिए। प्रति झाड़ी/वर्ष लगभग 7-8 कि.ग्रा. फल मिल जाते हैं। लोगनबेरी के पौधे लगभग 15 वर्षों तक फसल देते हैं। ये स्वयं ही प्रवर्धित होते हैं। अगेती तैयार होने के कारण, फलों का बड़ा एवं लुभावना आकार, रंग, श्रेष्ठ गुणवत्ता एवं आकर्षक सुवास अच्छी परिवहन गुणवत्ता होने के कारण यह एक अनूठा फल है। ■

पॉलीहाउस में टमाटर उत्पादन

मेदनी प्रताप सिंह[1], **नवल किशोर**[2] **सिंह** और **हरीश चन्द्र जोशी**[3]
कृषि विज्ञान केन्द्र, काफलीगैर (भाकृअनुप-विपकृअनुसं), बागेश्वर (उत्तराखण्ड)

हमारे दैनिक आहार में सब्जियों का महत्वपूर्ण स्थान है। सब्जी उत्पादन के क्षेत्र में भारत विश्व में दूसरे स्थान पर है। देश के विभिन्न प्रदेशों की जलवायु में विविधता के साथ विलक्षणता भी है। इस विविधता के कारण ही यहां पूरे वर्ष सब्जी की उपलब्धता के लिए बेमौसमी एवं अगेती खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। पॉलीहाउस को सब्जी उत्पादन के क्षेत्र में अप्रत्याशित सफलता मिल रही है। टमाटर में विद्यमान विशिष्ट गुणों मुख्यत: एंटीऑक्सीडेंट क्षमता, विटामिन सी, प्रोटीन, खनिज लवण की प्रचुरता, स्वाद तथा आकर्षक रंग एवं आकार के कारण इसका भोजन में महत्वपूर्ण स्थान है। इसका प्रयोग सब्जी, चटनी, सॉस एवं सलाद के रूप में किया जाता है।

किसानों को सब्जियों की उचित कीमत मिल सके इसके लिए पॉलीहाउस में खेती करना एक नवीन एवं सुगम उपाय है। इससे मौसम की प्रतिकूल परिस्थितियों जैसे-तापमान एंव आर्द्रता में भारी अंतर एवं निरंतर वर्षा के बावजूद भी नियंत्रित स्थितियों में खेती कर अधिक उपज भी प्राप्त की जा सकती है।

किस्में

पर्वतीय क्षेत्रों में पॉलीहाउस में लगाई जाने वाली किस्में सामान्यत: सीमित वृद्धि वाली होती हैं। इनमें वीएलटी-4, मनीषा, हिमसोना, अपूर्वा एवं अर्का रक्षक इत्यादि प्रमुख हैं।

बुआई का समय

निचले एवं मध्य पर्वतीय क्षेत्र में जनवरी से फरवरी एवं जुलाई तथा ऊंचे पर्वतीय क्षेत्र में मार्च से मई तक नर्सरी में बीज की बुआई की जा सकती है।

बीज दर

टमाटर का बीज 8 से 10 ग्राम प्रति नाली पर्याप्त रहता है। बीज को बोने से पहले कवकनाशी रसायन कार्बेन्डाजिम या थायरम से उपचारित कर बोना चाहिए।

पौध तैयार करना

सर्वप्रथम एक मीटर चौड़ी तथा 15 सें.मी. ऊंची व आवश्यकतानुसार लंबी क्यारियां बना लें। अब इस क्यारी में गोबर की अच्छी तरह से सड़ी खाद या वर्मीकम्पोस्ट मिट्टी मिलाकर खेत को भुरभुरा बनाएं तथा कवकनाशी दवा, थायरम को अच्छी तरह मिट्टी में मिला दें। इससे पौधों को कवकजनित रोगों से बचाया जा सकता है। क्यारी तैयार हो जाने के बाद उसमें 5-7 सें.मी. की दूरी पर गहरी कतारें बनाकर बीज की बुआई करें। कतारों को सड़ी गोबर की खाद से ढक दें। इसके बाद सूखी घास/पुआल से ढककर फव्वारे से हल्की सिंचाई करें। नर्सरी को स्वस्थ एवं निरोगी रखने के लिए कार्बेन्डाजिम अथवा मैन्कोजेब नामक दवा का एक से दो बार छिड़काव करें।

रोपण के लिए क्यारियों की तैयारी करना

सबसे पहले पॉलीहाउस में मिट्टी की खुदाई के उपरांत ढेलों को तोड़कर जमीन को समतल एवं मुलायम बनाया जाता है। फिर 100 सें.मी. चौड़ी और 15 सें.मी. ऊंची क्यारियां बनाई जाती हैं। कतारों के मध्य 50 सें.मी. का फासला छोड़ दिया जाता है। सड़ी हुई गोबर की खाद 20 कि.ग्रा. प्रति वर्ग मीटर की दर से डालकर मिट्टी में अच्छी तरह मिलाई जाती है।

क्यारियों को रोगमुक्त करना

4 प्रतिशत फॉर्मेल्डिहाइड (4 लीटर प्रति वर्ग मीटर) से क्यारियों को गीला किया जाता है। सभी क्यारियों को चार दिनों तक काली पॉलीथीन से ढक दिया जाता है। इससे हानिकारक रोगाणुओं का नाश हो जाता है। चार दिनों बाद पॉलीथीन की चादर को हटा देते हैं।

पौधों को लगाने से पहले प्रति वर्गमीटर नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश 5-5 ग्राम मृदा में अच्छी तरह मिला देनी चाहिए।

पौध रोपण

टमाटर की पौध के लिए तैयार की गई क्यारी में 50 सें.मी. की दूरी पर लाइन से लाइन तथा 50 सें.मी. पौधे से पौधे की दूरी पर दोहरी कतार में रोपण करते हैं। तैयार पौध को रोपण से पहले 1 ग्राम फफूंदनाशक (कार्बेन्डाजिम) का एक लीटर पानी में घोल बनाकर जड़ों को उपचारित करना चाहिए। इसके बाद पौधों को रोपना चाहिए। रोपण के तुरन्त बाद हजारे से हल्की सिंचाई करनी

[1]प्रक्षेत्र प्रबंधक [2,3]विषय वस्तु विशेषज्ञ

पर्ण कुंचन विषाणु रोग

इस रोग से ग्रसित पौधों की पत्तियां नीचे की ओर या कभी-कभी ऊपर की ओर मुड़ी होती हैं। पौधे में दो गांठों के बीच की दूरी कम हो जाने से पौधा छोटा एवं झाड़ीनुमा दिखाई देता है। बाद में इस तरह के संक्रमित पौधों में फूल एवं फल नहीं बनते हैं।

प्रबंधन

- संक्रमित पौधों को यथाशीघ्र उखाड़कर जला देना चाहिए।
- रोपाई के समय खेत में कार्बोफ्यूरॉन 1.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व कीटनाशक का मृदा में बुरकाव करना चाहिए, जिससे सूत्रकृमि का भी नियंत्रण हो सके।
- सफेद मक्खी से बचाव के लिए पौधशाला में नाइलॉन जाली के अंदर पौध तैयार करनी चाहिए।
- मेटास्टिाक्स के 0.5 मि.ली./लीटर पानी के जलीय घोल का 10 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करना चाहिए।

चाहिए। पौध स्थापित होने तक प्रतिदिन ऐसी सिंचाई करते रहना चाहिए।

टमाटर के पौधे 30 सें.मी. होने पर अवांछनीय शाखाओं को समय-समय पर काटते रहना चाहिए। इसके बढ़ने के लिए रस्सी या सुतली द्वारा पौधे व शाखाओं को साधा जाता है और समय-समय पर पानी दिया जाता है।

फसल सुरक्षा

फसल सुरक्षा के लिए कीट-व्याधियों से रोकथाम का समुचित उपाय किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। पॉलीहाउस में सफाई एवं नियंत्रित आवागमन से काफी हद तक कीटों पर सम्पूर्ण नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है।

कीट

प्रमुख रूप से इसमें पत्ती एवं फल खाने वाले तनाबेधक कीटों का प्रकोप होता है। इसकी रोकथाम के लिए प्रोफेनोफॉस (50 प्रतिशत ई.सी.) की 2 मि.ली. या इंडोक्साकार्ब (15.8 प्रतिशित ई.सी.) 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करना चाहिए।

फलबेधक सूंडी

इस कीट की सूंडी टमाटर के कच्चे फलों में छेदकर सुराख कर देती है। इसलिए उसमें आसानी से फफूंदी का प्रकोप हो जाता है।

टमाटर की तैयार फसल

प्रबंधन

- इस कीट की सूंडी का प्रकोप हरे फल में ही होता है इसलिए जब फल पक जाएं तो छिड़काव करने की जरूरत नहीं होती है।
- प्रोफेनोफॉस (50 प्रतिशत ई.सी.) की 2 मि.ली. या इंडॉक्साकार्ब (15.8 प्रतिशित ई.सी.) का 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर प्रत्येक 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करना चाहिए।

मोजेक

इसमें पत्तियों पर प्रारंभिक अवस्था में पीले व हरे रंग के मिश्रित धब्बे बन जाते हैं। बाद में पत्तियां सिकुड़कर ऐंठ जाती हैं।

सफेद मक्खी

सफेद मक्खी पौधों की पत्तियों से रस चूसती है। विषाणु रोग (पर्ण कुंचन) से पौधों को ग्रसित कर देती है।

प्रबंधन

- पॉलीहाउस में पौध तैयार करनी चाहिए, जिससे सफेद मक्खी न घुस पाए।
- बीज उपचार कार्बेन्डाजिम या थायरम नामक रसायन से 2.5-3.0 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से करें।
- प्रोफेनोफॉस (50 प्रतिशत ई.सी.) की 2 मि.ली. या इंडॉक्साकार्ब (15.8 प्रतिशित ई.सी.) की 1 मि.ली. मात्रा का प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें।

व्याधियां-कॉलर रॉट

इस रोग का प्रथम लक्षण जमीन से सटे पौधे के तने की छाल के ऊतकों का क्षय होना है। संक्रमित भाग पर सफेद रूई जैसी कवक जाल की वृद्धि स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

प्रबंधन

- पौध लगाने से पूर्व जड़ को एक प्रतिशत ट्राइकोडर्मा के घोल में 10 मिनट तक डुबोना चाहिए तथा 20 दिनों बाद उस भाग को फिर से भिगोना चाहिए।
- शीघ्र नियंत्रण के लिए 0.3 प्रतिशत कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (3 ग्राम प्रति लीटर पानी) तथा 0.1 प्रतिशत कार्बेन्डाजिम (1 ग्राम प्रति लीटर पानी) से तने के कॉलर (जमीन से लगा हुआ) के भाग को उपचारित करना चाहिए।

इससे पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है। यदि अधिक प्रकोप हो जाए तो पौधों को उखाड़कर भूमि में दबा दें।

चूर्णिल आसिता रोग

इसमें पत्तियों के निचले भाग पर छोटे-छोटे सफेद धब्बे पड़ जाते हैं। इसके बाद पूरी पत्तियां झड़ जाती हैं। इसके लिए 1 लीटर पानी में हेक्साकोनाजोल-1 मि.ली./लीटर या डेनोकेप-1 मि.ली./लीटर छिड़काव से चूर्णिल आसिता रोग पर नियंत्रण हो जाता है।

तुड़ाई

रोपाई के लगभग 70-75 दिनों के पश्चात टमाटर की तुड़ाई शुरू हो जाती है। पॉलीहाउस में टमाटर की पैदावार 6 महीने तक होती है।

भंडारण

जब फल हल्का लाल रंग का हो जाता है तो उसे तोड़कर छाया में रखें व 6^0-12^0 सेल्सियस तापमान में रखने से टमाटर को 3-4 सप्ताह तक ताजा रखा जा सकता है। इससे गुणवत्तायुक्त टमाटर का अधिक मूल्य भी प्राप्त होता है।

उत्पादन

पॉलीहाउस में टमाटर का सामान्यत: 8-10 कि.ग्रा. प्रति वर्ग मीटर उत्पादन होता है। यह लगभग 2-3 कि.ग्रा. प्रति पौधा होता है। इससे उपज लगभग 70 से 80 टन प्रति हैक्टर प्राप्त की जा सकती है। उत्पादन की सफलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि उत्पादन का उच्चतम स्तर हमें तब प्राप्त हो जब बाजार का भाव अधिकतम हो। ■

फल प्रसंस्करण से नए उत्पादों का विकास

नीलिमा गर्ग*
भाकृअनुप–केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

फलों में उपस्थित रेशा, प्रोटीन, शर्करा, विटामिन और खनिज मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यधिक जरूरी हैं। डॉक्टरों के अनुसार फल हमारे भोजन का एक बड़ा हिस्सा होना चाहिए। हाल के वर्षों में लोगों का फलों के प्रति रुझान बढ़ा है। प्रस्तुत लेख का उद्देश्य विश्व में प्रचलित नए फल उत्पादों के विषय में पाठकों को जागरूक करना है। इस प्रकार फलों के विभिन्न प्रसंस्करित उत्पादों से स्वास्थ्यवर्द्धन किया जा सकता है।

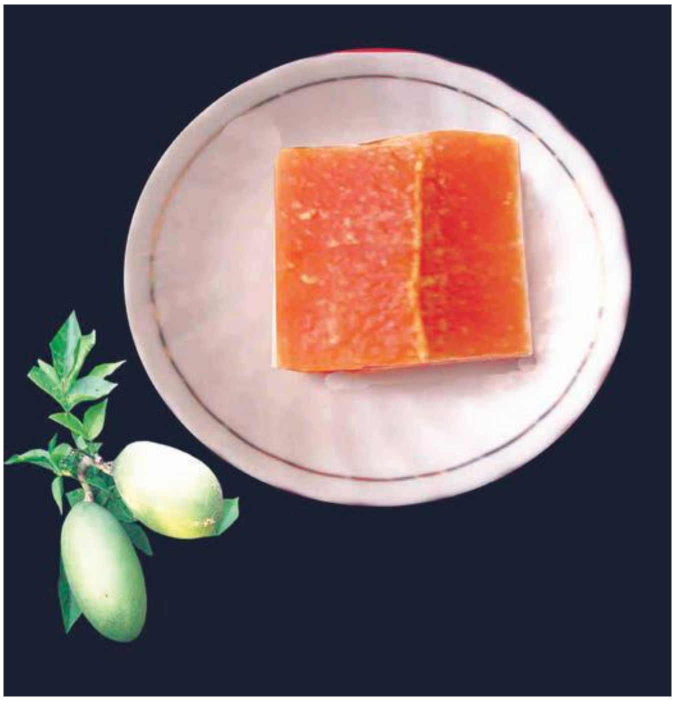
बेल पापड़

जामुन च्यू

फल प्रकृति की अद्भुत देन हैं। ये स्वाद और सुगंध का संगम होने के साथ-साथ विशिष्ट पौष्टिक गुणों से युक्त होते हैं। सृष्टि के आरंभ से मानव और फलों का साथ रहा है। आज भी जब मानव प्राकृतिक चिकित्सा अपनाता है तो वह मुख्यत: फलों के आहार पर निर्भर रहता है।

विभिन्न फल उत्पाद

- **नए उत्पाद:** जिनकी मार्केटिंग एक खर्चीला और लंबा रास्ता है।
- **मौजूदा उत्पाद लाइनों का विस्तार:** मौजूदा उत्पादों में परिवर्तन अथवा नई साज-सज्जा करके पेश करने के लिए कम खर्च के साथ उत्पाद पेश करना।

विश्व बाजार में फल प्रसंस्करण क्षेत्र ने नए उत्पादों की निरंतर वृद्धि प्रदर्शित की है। प्रमुख वैश्विक बाजारों में 50 से अधिक नए उत्पादों को निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है:

जमे हुए फलों के उत्पाद

आजकल जमे हुए फलों के नए उत्पाद विभिन्न पैकेजिंग में मिलते हैं। इनमें एक प्रकार का फल या विभिन्न प्रकार के फल होते हैं। इन्हें व्यंजन, फल सलाद, मिठाई और नाश्ते या बेकिंग और खाना पकाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

साइड डिश के रूप में विकसित उत्पाद

साइड डिश के रूप में विकसित विभिन्न फलों के प्रसंस्करित उत्पादों को आसानी से भोजन जैसे सलाद, करीयुक्त सब्जी अथवा भुने या तले व्यंजनों में मिलाया जा सकता है। इसके अलावा अमरूद, जैकफ्रूट आदि फलों से तैयार उत्पाद दुनिया भर में लोकप्रियता प्राप्त कर रहे हैं। यही नहीं फलों को भोजन तैयार करने वाली सामग्रियों और सहायक सामग्रियों के रूप में भी जोड़ा जा रहा है। इनमें सॉस, चटनियां, मसालेदार उत्पाद और सूप इत्यादि शामिल हैं।

फल स्प्रेड

फल स्प्रेड जैसे जैम या जेली इत्यादि में स्वाद, रंगों और सुगंध की एक विस्तृत श्रृंखला उपलब्ध है। इन्हीं उत्पादों में नयापन लाने के लिए और स्वाद या विशिष्टता जोड़ने के लिए उत्पाद इनोवेशन पर काम किया जा रहा है। कुछ उत्पाद मीठे और मसालेदार होते हैं। कुछ उत्पाद स्वाद और बनावट के अद्वितीय और असामान्य संयोजनों के साथ भी आ रहे हैं। रेस्तरां और होटलों के लिए कई प्रकार के फल स्प्रेड बनाए जाते हैं।

*प्रभागाध्यक्ष-तुड़ाई उपरांत प्रबंधन

आम की मदिरा

फल कन्फेक्शनरी

फल कन्फेक्शनरी श्रेणी के उत्पादों में विभिन्न नए और विशिष्ट रूप होते हैं। कई उत्पाद चीनी या खाद्य रंग के साथ लेपित या मीठे फल के रूप में आ रहे हैं। कुछ कैंडी और फलों के रस से भरी मिठाई के रूप में भी मिलते हैं। फल मिश्रित चॉकलेट व अन्य चबाने वाले पदार्थ भी मार्केट में बहुलता से मिल रहे हैं। इसके अतिरिक्त फलों के कंसंट्रेट, फलों के जूस, प्यूरी इत्यादि भी मार्केट में काफी लोकप्रिय हैं।

फलयुक्त डेयरी उत्पाद

फलयुक्त डेयरी उत्पाद भी फलों के स्वाद के साथ आ रहे हैं। इनमें दही, दूध, पनीर और मक्खन में मिश्रित फलों के टुकड़े भी शामिल हैं। नए उत्पाद ताजा नाश्ता वाले खाद्य पदार्थ या पेय, नाश्ते के भोजन और मिठाई के रूप में बाजार में प्रवेश कर रहे हैं। महिलाएं और बच्चे फलयुक्त दही उत्पादों के प्रमुख उपभोक्ता हैं।

केले का प्रोबायोटिक, प्यूरी और पेय

ऊर्जायुक्त और खेल पेय

अन्य फलयुक्त गैरमादक पेय पदार्थ जैसे ऊर्जायुक्त और खेल पेय भी महत्वपूर्ण उत्पाद हैं। खेल और ऊर्जा पेय श्रेणी में निर्माताओं ने विशिष्ट वर्गों की आवश्यकताओं के अनुरूप उत्पाद तैयार किए हैं। निर्माता उनके इनोवेशन पर उचित ध्यान देते हैं। इन पेय पदार्थों ने हाल के वर्षों में काफी लोकप्रियता प्राप्त की है। अन्य गैरमादक पेय जैसे पानी और शीतल पेय के साथ अधिक प्रतिस्पर्धी बनाने के लिए स्पार्कलिंग रस पेय की एक श्रृंखला भी उभर रही है।

मादक फल पेय

मादक पेय श्रेणी फल क्षेत्र के लिए नए उत्पाद विकास के अवसरों की विस्तृत श्रृंखला प्रदान करते हैं। बीयर इसी श्रेणी का उदाहरण है। हाल ही के वर्षों में फलों से बनी बीयर पेश की गई हैं। विभिन्न प्रकार के फलों से आसुत एवं शराब पेय भी पेश किए गए हैं। इसके अलावा, नए शराब उत्पादों की बढ़ती संख्या बाजार में प्रवेश कर रही है। शराब श्रेणी में निर्माताओं ने मुख्य रूप से नए उत्पादों को पेश करने में विविधता और स्वाद नवाचारों पर ध्यान केंद्रित किया गया

जामुन की चाय

न्यूनतम संसाधित उत्पाद

डिब्बाबंद फल निर्माता वर्तमान में उत्पादन की अपनी श्रृंखला का विस्तार कर रहे हैं। ये न्यूनतम संसाधित फल पर केंद्रित है। इसे स्नैक्स के रूप में उपयोग किया जा सकता है। डिब्बाबंद फल श्रेणी में 'पुराने उत्पाद' भी नई किस्मों के साथ नए नामों और पैकेज प्रकारों के साथ बनाए जाते हैं। फल स्नैक्स रेंज का विस्तार करने के लिए पिछले कुछ वर्षों में नए सूखे फल उत्पादों में वृद्धि देखी गई है। इस श्रेणी में स्वाद और विविधता की विस्तृत श्रृंखला मिलती है। इन उत्पादों की ताजगी बनाए रखने के उद्देश्य से इन्हें कम से कम संसाधित किया जाता है। इनमें मुख्य रूप से खुले ताजा कटे या पके हुए फल होते हैं। उनमें से ज्यादातर को तैयार स्नैक्स के रूप में पेश किया जाता है। कई सूखे फलों को अन्य खाद्य उत्पादों के साथ मिश्रण और अवयव के रूप में उपयोग किया जाता है। बाजार में मीठे, स्वादयुक्त, विटामिन और खनिजों से समृद्ध मेवे और अनाज जैसे अन्य उत्पादों के साथ मिश्रित, सूखे फल मिलते हैं। इन्हें सलाद, मिठाई, बेकिंग और खाना पकाने में उपयोग किया जाता है।

फल उत्पाद क्षेत्र में हाल के नए विकास

- पारंपरिक रूप से, फल स्वस्थ उत्पादों के रूप में स्वीकार्य हैं। उपभोक्ताओं की बढ़ती संख्या भी स्वस्थ फल उत्पादों की तलाश में है। इसके अलावा कार्बनिक प्राकृतिक फलों की लोकप्रियता भी बढ़ रही है।
- फल सबसे सुविधाजनक खाद्य उत्पादों में से एक बन रहे हैं। इसी वजह से न्यूनतम संसाधित फल और सूखे फलों का कारोबार काफी बढ़ा है। कम आय वाले लोग कम महंगे खाद्य पदार्थ खरीदते हैं।
- नए फल उत्पादों की विविधता और स्वाद उपभोक्ताओं को आकर्षित करने के महत्वपूर्ण कारण हैं।
- पैकेजिंग में नए प्रयोग किए जा रहे हैं, जिनसे उत्पाद में अधिक ताजगी बनी रहती है। ये अधिक पोर्टेबल और सुविधाजनक हो जाते हैं और उपभोक्ताओं को आकर्षित करने में सक्षम हैं। कुल मिलाकर, फल प्रसंस्करण कंपनियों के पास फलों के उत्पादों से बिक्री बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रकार के उत्पाद और बाजार अवसर हैं।

अमरूद साइडर

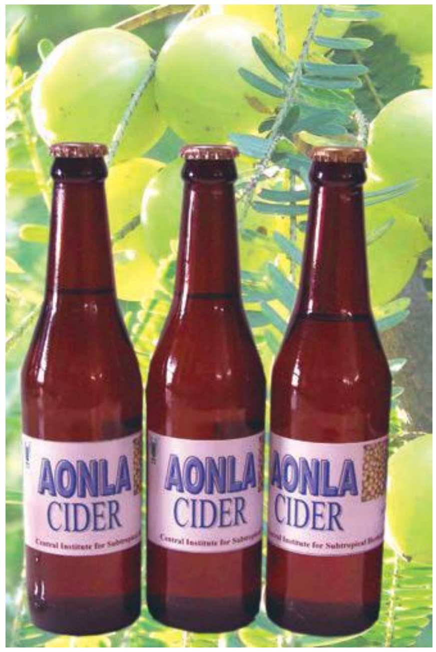

आंवला साइडर

है। उदाहरण के लिए मादक पेय श्रेणी में महिलाओं के रूझान के अनुसार फलयुक्त नए बीयर उत्पाद बनाए गए हैं।

अन्य नए उत्पाद

अन्य नए उत्पादों में फलयुक्त अनाज, शिशु खाद्य पदार्थ और पेय आदि शामिल हैं। विभिन्न फल मिश्रणयुक्त नए चाय उत्पादों की एक विस्तृत शृंखला (विशेष रूप से बर्फयुक्त चाय उत्पाद) और पीने के पेय बाजार में उतारे गए हैं। फलों के उत्पादों को खाद्य सामग्री के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। कुछ नए उत्पादों में फल, अनाज और दही का उपयोग करके पूर्ण भोजन होने का दावा किया जाता है।

पैकेजिंग इनोवेशन का प्रभाव

पैकेजिंग इनोवेशन ने फलों के रस और रस पेय श्रेणी में नए उत्पादों की शुरूआत में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आसानी से पोर्टेबल और तैयार पेय उत्पादों के रूप में उपलब्ध होने के लिए कई रस पेय जारी किए गए हैं। आजकल प्लास्टिक जिप पैकेज के प्रति रुझान बढ़ रहा है। इन्हें घर, कार्यालय और कार में या बच्चों के टिफिन में इस्तेमाल किया जा सकता है। फलों के स्प्रेड निचोड़ने योग्य कप अथवा ट्यूब के रूप में उपलब्ध हैं। इससे जेली को रोटी अथवा ब्रेड पर आसानी से फैलाया जा सकता है। फल कन्फेक्शनरी पैकेजिंग ने इन खाद्य पदार्थों के विपणन में भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अभिनव पैकेजिंग नई सुविधाओं और आकारों के साथ बाजार में लाई जा रही है। अधिकांश आइटम वर्तमान में लचीले पैक में उपलब्ध हैं। नए फलयुक्त डेयरी उत्पादों का एक महत्वपूर्ण बाजार बन रहा है। विशिष्ट उपभोक्ताओं के लिए उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप पैकेजिंग डिजाइन किए जा रहे हैं। स्कूली बच्चों के लंच बॉक्स के लिए डिजाइन किए गए कटोरे में जमे हुए फल, विटामिन और मिनरल्स से भरपूर फलों के रस भी शामिल हैं। बच्चों और युवाओं को आकर्षित करने के लिए पैकेजिंग को विभिन्न रूपों और डिजाइनों में आकार दिए जा रहे हैं।

फल प्रसंस्करण में भारत की स्थिति

भारत का विश्व में फलों के उत्पादन में चीन के बाद दूसरा स्थान है। हमारे यहां बागवानों को उनकी उपज का पूरा दाम नहीं मिल पाता है। सीजन में जब फल आता है तब मार्केट में उपज की बाढ़ सी आ जाती है। इसके कारण दाम गिरने लगते हैं। बागवान को उसकी लागत निकालना भी भारी पड़ जाता है। दूसरा कारण यह है कि फल बहुत ही अधिक नाजुक प्रकृति के होने के कारण जल्दी खराब हो जाते हैं। इनमें उपस्थित अधिक शर्करा और पानी की मात्रा सभी सूक्ष्मजीवों को अपनी तरफ आकर्षित करती है। इससे ये कमरे के तापमान पर ज्यादा दिनों तक रह नहीं पाते हैं। फसल को पूरी तरह से इस्तेमाल करने, बागवानों को अच्छा दाम दिलाने तथा रोजगार के नए अवसर प्रदान करने के लिए प्रसंस्करण एक बहुत ही महत्वपूर्ण माध्यम है। प्रसंस्करण में हम मुख्यत: जैम, जेली, अचार, मुरब्बा, स्क्वैश इत्यादि उत्पादों पर ही विशेष ध्यान देते हैं। हमारी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण विश्व के सभी प्रकार के फल भारत में उपजाए जाते हैं। प्रसंस्करण में हम पूरे विश्व से पिछड़े हुए हैं। कुछ रुटीन प्रकार के उत्पादों के अलावा हमारे यहां नए अभिनव उत्पादों को बनाने की बहुत अधिक आवश्यकता है।

केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान ने विकसित किए अभिनव उत्पाद

केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान ने फलों से नए-नए उत्पाद बनाए हैं। इनमें आम, शहतूत, बेल, महुआ की वाइन; आंवला, अमरूद, बेल, कच्चे आम के साइडर; आंवला, बेल, जामुन के प्रोबायोटिक ड्रिंक। आम, अमरूद, बेल, अंगूर, जामुन इत्यादि के सिरके और आंवला, जामुन की चाय के साथ आंवला, जामुन, आम, बेल के फाइबरयुक्त बिस्किट और विभिन्न प्रकार के फलयुक्त दही शामिल हैं।

हमारा प्रयास होना चाहिए कि फल उत्पादन में अग्रणी हमारा देश फल प्रसंस्करण में भी अग्रणी बने और यहां तैयार किए गए फल उत्पाद विश्व बाजार में विशिष्ट स्थान प्राप्त करें। ■

कम चीनी और कैलोरी वाले उत्पाद

अतीत में फलों के रस और रस के पेय को स्वस्थ उत्पाद माना जाता था। वर्तमान में कम कार्बनयुक्त आहार में उपभोक्ताओं की रुचि इन उत्पादों को तेजी से लोकप्रिय कर रही है। इसलिए निर्माताओं ने कई फल श्रेणियों में नए स्वास्थ्य उन्मुख उत्पादों को पेश करना शुरू कर दिया है। फल और फलों के कम वसायुक्त उत्पाद, विटामिन/खनिज फोर्टिफाइड उत्पाद, कम चीनीयुक्त उत्पाद, कैलोरीमुक्त, कम कैलोरीयुक्त उत्पाद उपभोक्ताओं को भा रहे हैं। परंपरागत रूप से कन्फेक्शनरी क्षेत्र पर चीनी और चॉकलेट कन्फेक्शनरी का प्रभुत्व रहा है। गिरते स्वास्थ्य और बढ़ती मोटापा दरों ने चीनी, वसा और कार्बोहाइड्रेट दुष्प्रभाव के बारे में जागरूकता बढ़ा दी है। नतीजतन स्वस्थ भोजन को प्रोत्साहित करने के लिए कम चीनी और कैलोरी वाले उत्पादों का निर्माण हो रहा है। चॉकलेट और कैंडी कन्फेक्शनरी के लिए विकल्प के रूप में नए फल कन्फेक्शनरी उत्पाद बनाए जा रहे हैं। डिब्बाबंद और जमे हुए फल श्रेणियां भी कम शक्कर, कम कैलोरी के साथ उपलब्ध हैं।

कैसे लगाएं वैज्ञानिक विधि से नये बाग

सतेन्द्र कुमार[1], **सुनील कुमार**[2] और **राजीव कुमार अग्रवाल**[3]
भाकृअनुप-भारतीय चारागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झांसी-284003 (उत्तर प्रदेश)

कृषि में जोखिम कम करने के लिए फसल में विविधीकरण अपनाने की सलाह दी जाती है। विविधीकरण के क्रम में खेती के साथ-साथ फल वृक्षों को लगाना लाभदायक माना गया है, विशेषकर बारानी क्षेत्रों में। फल वृक्ष गहरी जड़ों वाले होते हैं। इसके कारण विषम परिस्थितियों, जैसे-सूखा, अतिवृष्टि, असमय वृष्टि आदि तीनों दशाओं में भी ये कुछ न कुछ उपज देकर जोखिम कम कर देते हैं। ये फल वृक्ष कम से कम 15-25 वर्षों तक अच्छी फसल देते हैं।

नये बाग लगाने का तात्पर्य 15-25 वर्षों की भावी योजना बनाना है। इसलिए नये बाग लगाने से पूर्व निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है:

- स्थान की मृदा-जलवायु एवं जल उपलब्धता
- उचित स्थान का चयन एवं खेत की तैयारी
- उपयुक्त फल वृक्ष एवं किस्मों का चयन
- गड्ढे की खुदाई एवं भराव, मृदा-नमी संरक्षण उपाय
- फल वृक्षों की उपलब्धता
- फल वृक्षों का रोपण
- अंत: फसलों का चुनाव एवं उत्पादन
- रोपण के बाद वृक्षों की देखरेख

मृदा-जलवायु

बाग लगाने से पूर्व मिट्टी के बारे में विशेषकर यह ध्यान दें कि मिट्टी की गहराई कम से कम 1-1.5 मीटर और मृदा की संरचना समुचित होनी चाहिए। मृदा का पी-एच मान 6.5-7.5 व मृदा में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा 0.4 प्रतिशत से अधिक होनी चाहिए। उदाहरणार्थ बुन्देलखंड में मार, काबर, पडुआ, राकर चार तरह की मृदाएं पाई जाती हैं। राकर छोड़कर सभी मृदाओं में फलवृक्षों का रोपण संभव है। इस क्षेत्र की औसत वर्षा एवं तापमान आदि का ध्यान रखना चाहिए। बुन्देलखंड में 80-100 सें.मी. वर्षा जुलाई-सितंबर के बीच होती है। अत: उसी के दौरान फलवृक्षों का रोपण करें। शीत ऋतु में 3-5^{0} सेल्सियस तथा ग्रीष्म ऋतु में 40-45^{0} सेल्सियस तापमान होता है। हमेशा ऐसी प्रजातियों का चुनाव करें, जो उपरोक्त तापमान के प्रति सहनशील हों।

उचित स्थान का चयन एवं खेत की तैयारी

बाग लगाने का स्थान यदि नया है या उस पर जंगल-झाड़ी हैं, तो उसे कटवाकर साफ कराएं तथा मिट्टी पलट हल से गहरी जुताई कराकर, हैरो/कल्टीवेटर चलवाकर

[1]वरिष्ठ शोध अध्येता; [2]प्रधान वैज्ञानिक; [3]प्रधान वैज्ञानिक

मिट्टी को भुरभुरी करें तथा खेत को समतल करें। इसके साथ ही सिंचाई की व्यवस्था अवश्य करनी चाहिए। फल वृक्षों को आरंभ के दो वर्षों में विशेषकर ग्रीष्म ऋतु में समुचित पानी देना आवश्यक है। जंगली जानवरों तथा मानव से बचाव के लिए सुरक्षा के तौर पर बाड़ या कंटीले तार से घेराव करना आवश्यक है। गर्मी में लू तथा सर्दी में पाले से बचाव के लिए दक्षिण-पश्चिम दिशा में वायुरोधक पौधे लगाएं।

गड्ढे की खुदाई-भराव एवं मृदा नमी संरक्षण

करौंदा और आम की आम्रपाली किस्म को 2×2.5 मीटर तथा अनार, किन्नो, कागजी नीबू, अमरूद, बेल, संतरे को 6×6 मीटर तथा आंवला, आम, लसोड़ा, जामुन को 8×8 मीटर की दूरी पर लगाते हैं। फलों की प्रजाति के चयन के बाद उपयुक्त दूरी पर निशान बनाकर रेखांकन करना चाहिए। छोटे फल वृक्षों जैसे-करौंदे के लिए 60×60×60 सें.मी. (लंबी, चौड़ी, एवं गहरी) तथा अन्य फल वृक्षों के लिए 1 × 1 × 1 मीटर (लंबी, चौड़ी, एवं गहरी) गड्ढे की खुदाई करें। ऊपरी आधी मिट्टी एक तरफ तथा शेष आधी मिट्टी दूसरी तरफ डालें। इन गड्ढों की खुदाई करने का उपयुक्त समय मई-जून है। सूर्य की तेज धूप से मृदा का सोलराइजेशन (शोधन) कर लेना चाहिए। जून में वर्षा आने के पूर्व इन गड्ढों को 30-50 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद तथा 30-50 मि.ली. क्लोरोपाइरीफॉस का घोल 10 लीटर पानी में मिलाकर प्रति गड्ढे में डालें। इससे दीमक के प्रकोप से पौधों को सुरक्षित रखा जा सकता है। गड्ढे भरते समय ऊपर की आधी मिट्टी पहले डालें तथा शेष नीचे की आधी मिट्टी बाद में डालें। अर्थात् नीचे की मिट्टी ऊपर तथा ऊपर की मिट्टी नीचे हो जाए। इस प्रकार भरे हुए गड्ढे की मिट्टी भुरभुरी होने के कारण रोपित फल वृक्षों की जड़ों का बढ़ाव बहुत तेजी से होगा और फल वृक्ष शत-प्रतिशत स्थापित होंगे। मृदा एवं नमी के संरक्षण के लिए बंधीकरण, पौधों के बीच-बीच में छोटे गड्ढे या मल्चिंग का प्रयोग करें। इससे वर्षा का पानी ज्यादा दिनों तक खेत में नमी बनाए रखता है।

स्थापित बाग में अंत:चारा फसलीकरण

रोपण के बाद फल वृक्षों की देखरेख

फल वृक्षों के रोपण के बाद आरंभ के दो वर्ष तक अच्छी देखरेख की आवश्यकता होती है। जैसे-

- वर्षा ऋतु के बाद शुरू के दो वर्ष तक समय पर पौधों को पानी अवश्य लगाएं। पानी शाम को ही लगाना अच्छा रहता है।
- प्रत्येक सिंचाई के बाद थालों की गुड़ाई करें। थालों में खरपतवार न उगने दें।
- सर्दी में पाले से तथा गर्मी में लू से बचाव के लिए पौधे को घास से चारों तरफ से हल्का-हल्का ढक कर रखें।
- मुख्य जड़ से कल्ले न निकलने दें।
- रोग या कीट का प्रकोप देखें तो तुरंत कवकनाशी या कीटनाशी दवा का छिड़काव करें।
- सहारे के लिए जो लकड़ी लगाएं उस पर दीमकनाशी दवा का अवश्य लेप करें।
- यदि कोई पौधा मर जाए तो समय रहते उसको पुन: रोपित करें।
- टपक विधि से सिंचाई की व्यवस्था करें, जिससे कम पानी में पौधों की जल मांग की पूर्ति की जा सके।

अमरूद में फलत

फल वृक्षों की उपलब्धता

वर्षा ऋतु में बाग लगाने के पूर्व ही चयनित प्रजाति एवं किस्मों की उपलब्धता सुनिश्चित कर लें। अच्छा होगा यदि आंशिक/पूर्व भुगतान करके पौधे सुरक्षित करा लें।

कलमी पौधों की खरीददारी में सावधानियां

- कलमी पौधों में मुख्य जड़ एवं शाख का जुड़ाव सही एवं परिपक्व हो
- जुड़ाव पर बहुत बड़ी गांठ न बनी हो
- जुड़ाव के नीचे अर्थात मुख्य जड़ से शाखा न निकली हो
- पौधा 1-2 वर्ष से अधिक पुराना हो
- पौधे की मिट्टी की पिंडी टूटी न हो, जड़ें दिखती हुई न हों

बाग लगाने के लिए स्थान का चयन

खेत में एक रेखा में गड्डों की खुदाई

पौधों को सरकारी, पंजीकृत या विश्वसनीय पौधशाला, राजकीय उद्यान विभाग, कृषि विश्वद्यिालय या भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की संस्थाओं की पौधशाला से खरीदना उचित रहता है। पौध खरीदारी का बिल अवश्य लें एवं सुरक्षित रखें।

स्थानांतरण करते समय विशेष ध्यान रखें

- पिंडी को लंबी घास, मूंज या कांस में लपेट कर रखें।
- ज्यादा दूर ले जाने के लिए पिंडी को टोकरी या कार्टून में ठीक से लगाकर बांधें ताकि पौधा हिलने पर पिंडी न टूटे।
- यदि पौधों पर ज्यादा पत्तियां हों, तो कुछ कम कर दें।
- पौधों पर पानी का छिड़काव करें एवं पौधे छाया में रखें।

सही प्रजाति एवं किस्मों का चयन

बाग लगाने से पूर्व वहां की मृदा जलवायु के उपयुक्त फल वृक्षों की प्रजाति एवं किस्म का चयन करें। वर्षा आश्रित क्षेत्रों में जहां 70-90 सें.मी. वार्षिक वर्षा होती है, वहां बलुई लाल मिट्टी में जैसे-किन्नो, बेर, अमरूद, इमली तथा काली/पड़वा मिट्टी में आंवला, शरीफा, बेल, आम, कागजी नीबू लगाएं। इन प्रजातियों की अच्छी किस्मों के कलमी पौधे लगाएं जैसे-

सारणी: फल वृक्षों की उपयुक्त किस्में

	फल वृक्ष	उपयुक्त किस्में
1.	बेर	गोला, उमरान, सेब, बनारसी एवं कड़ाका।
2.	बेल	मिर्जापुरी कागजी, इटावा कागजी, नरेन्द्र बेल 5 एवं नरेन्द्र बेल 9।
3.	अनार	गणेश, कंधारी, ढोलका, जालौर एवं सीडलैस।
4.	आम	दशहरी, लंगड़ा एवं आम्रपाली।
5.	करौंदा	लाल, सफेद एवं नेटाल प्लम।
6.	आंवला	कृष्णा, कंचन, चकैया, नरेन्द्र आंवला 3, 7 एवं 10।
7.	नीबूवर्गीय	कागजी नीबू एवं किन्नो इत्यादि।

फल वृक्षों का रोपण

वर्षा ऋतु में जब दो-तीन अच्छी वर्षा हो जाती हैं तो जून में भरे हुए, गड्ढे धंसकर चारों ओर से दरार बना लेते हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि गड्ढा नमी से संतृप्त हो गया है। साथ ही जब वर्षा हो रही हो तो उसी समय पौधा रोपित करें। जहां तक संभव हो पौधे सायंकाल में रोपें। रोपने के तुरंत बाद मिट्टी को दबा दें एवं पानी अवश्य लगाएं ताकि जड़ों के चारों ओर की वायु निकल जाए। रोपण के पूर्व पिंडी की घास-मूंज घास, कांस या पॉलीथीन अवश्य निकाल लें। गड्ढे से पिंडी के बराबर ही मिट्टी निकालें।

अमरूद के कलमी पौधे का रोपण

पौधा गड्ढे के बीचों-बीच लगाएं। मुख्य जड़ एवं शाख के जोड़ को जमीन से 20-25 सें.मी. ऊपर रखना चाहिए। पौधा लगाने के बाद उसे सहारे के लिए लकड़ी की शाखा पर दीमकनाशी दवा लगाकर उसे पौधे के बगल में लगा दें।

- यदि पौधे अधिक दिनों तक रखने हों, तो पौधों को पिंडी सहित 30 सें.मी. गहरे गड्ढे में दबा दें एवं पानी का छिड़काव करते रहें।

अंत:फसल का चुनाव

फलवृक्ष लगाने के 3-4 वर्षो के बाद फलत में आते हैं। उनके बीच में यदि सिंचाई के साधन हों तो सब्जियों की खेती अन्यथा सामान्य रूप से जिस फसल की खेती करना चाहें, कर सकते हैं। यदि सिंचाई के साधन उपलब्ध नहीं हैं तो हरा चारा प्राप्त करने के लिए घास एवं दलहनी चारा फसलों की खेती भी कर सकते हैं।

इस प्रकार उपरोक्त बातों का ध्यान रखकर बाग लगायेंगे, तो निश्चित रूप से आपकी लंबे समय (15-25 वर्षीय) की योजना सफल होगी। आपका बाग स्थापित होगा और आपको अच्छी उपज, अच्छी आय प्राप्त होगी। ■

आलू बीज उत्पादन में उपयोगी नेट हाउस

सुगनी देवी[1], **रत्ना प्रीति कौर**[1], **ए.के. सिंह**[1] और **आर.के. सिंह**[2]

अच्छी गुणवत्ता तथा रोगमुक्त उच्च तकनीकी आलू के बीज उत्पादन के लिए नेट हाउस प्रबंधन तकनीक का बहुत महत्व है। गुणवत्ता वाले आलू के बीज उत्पादन के लिए नेट हाउस उत्पादन और इसका तकनीकी विवरण इस लेख में बताया गया है। नेट हाउस में लगाए जाने वाले माइक्रोप्लान्ट्स या मिनीट्यूबर्स प्रमाणित और वायरस से मुक्त होने चाहिए। मृदा सौरीकरण तथा हरी खाद फसल जैसे ढैंचा (सेसबानिया अकुलेटा), मृदा के स्वास्थ्य में सुधार लाने के लिए जुलाई-अगस्त में बोनी चाहिए। नेट हाउस में रोपण करने से पहले कंदों को अच्छी तरह से अंकुरित और माइक्रोप्लान्ट्स को अच्छी तरह कठोर करने की आवश्यकता होती है। कीटमुक्त वातावरण बनाए रखने के लिए आवश्यक कीटनाशकों का साप्ताहिक छिड़काव करना जरूरी है। इसके अलावा भंडारण के दौरान आलू की सतह पर उत्पन्न होने वाले रोगों को रोकने के लिए 3 प्रतिशत बोरिक एसिड का स्प्रे करके 4^0 सेल्सियस तापमान और 90 प्रतिशत आर्द्रता से अधिक ठंडे तापमान पर भंडारण करना चाहिए। आलू बीज की गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए उसका उचित प्रबंधन सबसे महत्वपूर्ण है।

आलू एक वैश्विक खाद्य फसल के रूप में उभर कर सामने आया है। यह न केवल एक सब्जी के रूप में बल्कि मूल भोजन के रूप में भी तेजी से स्वीकार कर लिया गया है। एफएओ द्वारा आलू की फसल की पहचान भविष्य की वैश्विक खाद्य सुरक्षा के समाधान के लिए की गई है। यह फसल विश्व की प्रमुख खाद्य फसलों की तुलना में प्रति यूनिट क्षेत्र और समय के आधार पर उच्चतम पोषण और शुष्क पदार्थ देती है।

भारत की बढ़ती आबादी की मांग को पूरा करने के लिए संभवतः वर्ष 2050 तक 122 मीट्रिक टन उत्पादन करना जरूरी होगा। इस उत्पादन क्षमता को प्राप्त करने में सबसे मुख्य योगदान अच्छे गुणवत्ता वाले रोगों से मुक्त आलू के बीज कंदों का है। इसके उत्पादन को वर्ष 2050 तक दोगुना किया जाना चाहिए। आलू एक वानस्पतिक रूप से पैदा होने वाली फसल है। इसके कारण आलू के कंद विभिन्न वायरल संक्रमणों से ग्रस्त हो जाते हैं। ये साल दर साल इसकी उत्पादकता को गंभीरता से प्रभावित करते हैं। उच्च तकनीक बीज उत्पादन प्रणालियों के आगमन ने इस फसल की उत्पादकता और गुणवत्ता को बढ़ाने की विपुल संभावनाएं खोल दी हैं।

इस तकनीक के अंतर्गत टिश्यू कल्चर लैब्स, नेट हाउस और एरोपोनिक इकाइयों जैसी नियंत्रित सुविधाओं के अंतर्गत कई गुना दर से आलू बीज उत्पादन किया जाता है। इस लेख में आलू के बीज उत्पादन के लिए नेट हाउस में बीज उत्पादन से संबंधित तकनीकी विवरण की मूल अवधारणाओं पर विचार-विमर्श किया गया है।

नेट हाउस में रोपण

नेट हाउस स्थान का उपयोग 3 ग्राम से कम के मिनीट्यूबर, एरोपोनिक कंद और माइक्रोप्लान्ट्स को लगाने के लिए किया जाता है। नेट हाउस में रोपण करने से पहले कंदों को अच्छी तरह से अंकुरित और माइक्रोप्लांट को अच्छी तरह कठोर/सुदृढ़ीकरण करने की आवश्यकता होती है। अच्छी तरह से अंकुरित किए हुए कंद अक्टूबर के पहले से चौथे सप्ताह के बीच में लगाए जाते हैं। इन कंदों को अंकुरित करने के लिए 15-20 दिनों के लिए 80 प्रतिशत से अधिक आर्द्रता और 20-25^0 सेल्सियस तापमान पर प्रकाश में रखा जाता है। आमतौर पर सूक्ष्म पौधों को मध्य नवंबर तक रोपित किया जाता है। इस समय तापमान 15-25^0 सेल्सियस तक गिर जाता है। माइक्रोप्लांट की जड़ धोने के बाद 0.3 प्रतिशत बाविस्टिन से उपचारित तथा रोपण के बाद 0.2 प्रतिशत

[1]केंद्रीय आलू अनुसंधान केंद्र, जालंधर (पंजाब);
[2]भाकृअनुप-केंद्रीय आलू अनुसंधान संस्थान, शिमला (हिमाचल प्रदेश)

क्या है नेट हाउस

नेट हाउस विशेष रूप से शुरूआती पीढ़ी की बीज सामग्री के गुणन के लिए कीटमुक्त वातावरण प्रदान करते हैं। इसमें टिश्यू कल्चर, माइक्रोप्लांट्स, एरोपोनिक मिनीट्यूबर और 3 ग्राम से कम वजन के मिनीट्यूबर की रिसाइक्लिंग शामिल हैं। इनका उपयोग किसानों के अपने बीजों को लंबे समय तक रोगमुक्त अवस्था में बनाए रखने और गुणन के लिए किया जा सकता है। देश में प्रचलित समग्र उच्च तकनीक बीज उत्पादन प्रणालियों में नेट हाउस ज्यादा खर्चीली है। अधिकतम लाभ पाने के लिए इसके कुशलतापूर्वक प्रबंधन की आवश्यकता है।

नेट हाउस में रोपण के लिए माइक्रोप्लांट्स

मेन्कोजेब/0.3 प्रतिशत बाविस्टीन से ड्रेंचिंग की जाती है।

पौध संरक्षण उपाय

कीटों और रोगों की मौजूदगी के लिए नेट हाउस के पौधों की नियमित रूप से निगरानी करनी पड़ती है। कीट प्रूफ नेट के बावजूद सफेद मक्खी और एफिड्स कीट नेट हाउस में प्रवेश कर जाते हैं। इससे बहुत ज्यादा नुकसान होता है और बाहर से वायरस का प्रसारण/हस्तांतरण भी होता है। कीटमुक्त वातावरण बनाए रखने के लिए आवश्यक कीटनाशकों के साप्ताहिक छिड़काव की जरूरत होती है। जनवरी और फरवरी में एक अन्य महत्वपूर्ण रोग पछेती झुलसा आलू को प्रभावित करता है। जब भी स्थायी फसल में रोगों के लक्षण होते हैं तो उचित कीटनाशकों के स्प्रे की आवश्यकता होती है।

नेट हाउस में मृदा सौरीकरण

सिंचाई

आलू के अच्छे अंकुरण के लिए पर्याप्त नमी प्रदान करने हेतु मृदा को तैयार करने के बाद और रोपण से पहले सिंचाई करने की सलाह दी जाती है। रोपण के बाद क्यारियों को क्षेत्र की क्षमता तक सिंचित किया जाना चाहिए। सूक्ष्म पौधों को लगाते समय, प्रत्यारोपण के 15 दिनों तक क्षेत्र की क्षमता तक सिंचित रखने के लिए सलाह दी जाती है ताकि उत्तरजीविता बढ़ सके। इसके बाद साप्ताहिक सिंचाई पर्याप्त रहती है। उत्तर-पश्चिमी मैदानी इलाकों में पौध दिसंबर और जनवरी के ठंडे महीनों में लगाई जाती है। यहां सिंचाई की नियमितता कम कर देनी चाहिए। यह इन इलाकों में उच्च आर्द्रता को बढ़ावा दे सकती है। पछेता झुलसा रोग को इससे बढ़ावा मिलता है। संभव हो तो 1000 लीटर/घंटा की क्षमता प्रवाह दर के साथ नेट हाउस में फव्वारा प्रणाली को स्थापित करने की सलाह दी जाती है।

नेट हाउस में रोपण हेतु एरोपोनिक मिनीट्यूबरस

पत्ते काटना

नेट हाउस की फसल के रोपण के

सारणी 1. नेट हाउस के विभिन्न कार्यक्रमों की सूची

	नेट हाउस की निर्माण योजना		
	रोपण विधि	स्पेसिंग	टिप्पणियां
1.	रिज और फरो	30-45×10-15 सें.मी.	30×10 सें.मी. की स्पेसिंग के साथ लगभग 500 वर्ग मीटर के क्षेत्र में लगभग 13,300 माइक्रोप्लान्ट्स को समायोजित किया जा सकता है।
2.	फ्लैट बेड	10×10 सें.मी.	उच्च घनत्व रोपण
	मृदा स्वास्थ्य		
	तकनीक	विधि	टिप्पणियां
3.	मृदा सौरीकरण	अप्रैल और मई में 25 दिनों के लिए, 25 माइक्रॉन की एक कम घनत्व वाली पॉलीप्रोपाइलीन शीट से ढक दिया जाता है।	नेट हाउस क्षेत्र को मृदाजनित रोगजनकों से मुक्त करने के लिए परीक्षण किया जाना चाहिए।
4.	हरी खाद	हरी खाद फसल जैसे ढैंचा (सेस्बानिया अकुलेटा) की बुआई जुलाई-अगस्त में करके, बुआई के 6-7 सप्ताह बाद मृदा में शामिल किया जाता है।	1. रासायनिक उर्वरकों के उपयोग को बढ़ाने और मृदा के स्वास्थ्य में सुधार लाने के लिए। 2. मृदाजनित बीमारियों जैसे कि काली रूसी (ब्लैक स्क्रफ) और सामान्य दाग (कॉमन स्केब) आदि को कम करने के अतिरिक्त लाभ भी प्रदान करता है।
5.	उर्वरक	डीएपी (डाई अमोनियम फॉस्फेट) की खुराक/10.87 ग्राम प्रति वर्ग मीटर, यूरिया/3.3 ग्राम प्रति वर्ग मीटर और एमओपी/12.5 ग्राम प्रति वर्ग मीटर क्षेत्र में लगाई जाती है। यूरिया की शेष खुराक (3.3 ग्राम प्रति वर्ग मीटर) माइक्रोप्लान्ट्स और एरोपोनिक कंदों की ट्रांसप्लांटिंग के 50 दिनों के बाद (या मिट्टी चढ़ाते समय) देनी चाहिए।	पौधे की बढ़वार के लिए 15 दिनों के अंतराल पर सूक्ष्म पोषक तत्वों का स्प्रे किया जाना चाहिए।

सारणी 2. पौध संरक्षण कार्यक्रम की सूची

वायरस नियंत्रण के लिए बीज आलू फसल में वेक्टर प्रबंधन

(फसल की ऊंचाई के ठीक ऊपर पीले जाल/ट्रैप 30×30 सें.मी. पर लगाएं)

कीटनाशक	खुराक	उपचार का समय	उपचार की विधि	टिप्पणियां
इमिडाक्लोप्रिड 200 एस एल (कॉन्फिडर)	4 मि.ली./10 लीटर पानी	अंकुरण के बाद	बीज उपचार	
इमिडाक्लोप्रिड 200 एस एल (कॉन्फिडोर)	3 मि.ली./10 लीटर पानी	रोपण के 20 दिनों के बाद (95 प्रतिशत अंकुरण)	स्प्रे	
ट्राइजोफॉस 40 ई.सी.(होस्टैथियन)	2 मि.ली./लीटर पानी	रोपण के 30 दिनों के बाद	स्प्रे	
फोरेट 10 जी	15 कि.ग्रा./हैक्टर	पौधों की मिट्टी चढ़ाते समय (रोपण के 25-30 दिनों के बाद)	मिट्टी में शामिल	
थियामेथाक्सम 25 डब्ल्यूपी (एकतारा)	5 ग्राम/10 लीटर पानी		स्प्रे	
मेटासिस्टॉक्स 35 ईसी	1.25 लीटर/हैक्टर	रोपण के 55 दिनों के बाद	स्प्रे	
इमिडाक्लोप्रिड 200 एसएल (कॉन्फिडोर)	3 मि.ली./10 लीटर पानी	रोपण के 65 दिनों के बाद	स्प्रे	
पिछेती झुलसा रोग का प्रबंधन				
मेन्कोजेब		जब पिछेती झुलसा बनने की आशंका हो ($15-22^0$ सेल्सियस और उच्च आर्द्रता)	स्प्रे	रोग निरोधक स्प्रे
मेटालेक्सिल/ सायमॉक्सीनिल/फेनोमाडेन/ डायमिथोमोर्प्लस /मेन्कोजेब	0.3 प्रतिशत	रोग की उपस्थिति पर	स्प्रे	

माइक्रोप्लांट्स का बाविस्टिन/मैन्कोजेब/0.3 प्रतिशत के साथ उपचार

100-115 दिनों के बाद पत्तों को काटकर नेट हाउस से बाहर निकाल दिया जाता है। उजागर कंदों को तुरंत मिट्टी की परत के साथ ढक दिया जाता है। इससे इनकी पुनर्वृद्धि को रोका जा सकता है। शाकनाशी का उपयोग पत्तों को मारने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। वे कंद को भी प्रभावित करने की आशंका रखते हैं।

कटाई

मिनीट्यूबर्स के पत्ते काटने के 15-20 दिनों के बाद कंद की त्वचा अच्छी तरह से पक जाती है, इसे क्यूरिंग भी कहा जाता है। ग्रेडिंग और भंडारण से पहले 15-20 दिनों के लिए ठंडे और छायादार स्थान पर आलू की त्वचा अच्छी तरह से पकने तक रख देनी चाहिए।

ग्रेडिंग

क्यूरिंग के बाद मिनीट्यूबर को दो आकारों में वर्गीकृत किया जाता है, >3 ग्राम और <3 ग्राम। भंडारण के दौरान सतह से उत्पन्न होने वाले रोगों को रोकने के लिए मिनीट्यूबर्स पर 3 प्रतिशत बोरिक एसिड का स्प्रे किया जाता है। माइक्रोप्लांट और एरोपोनिक कंद के मिनीट्यूबर को न्यूक्लियस बीज (पीढ़ी-0) माना जाता है। 3 ग्राम से ज्यादा वजन वाले मिनीट्यूबर अगले सीजन के दौरान जेनरेशन-I में लगाए जाते हैं। <3 ग्राम के मिनी ट्यूबर्स का नेट हाउस में एक बार फिर पुनर्नवीनीकरण किया जाता है।

नेट हाउस निर्माण

मिनीट्यूबर उत्पादन के लिए चयनित नेट हाउस क्षेत्र गंभीर मृदाजनित रोगजनकों और कीटों से मुक्त होना चाहिए। विशेष रूप से मस्सा, आलू पुट्टी सूत्रकृमि (ग्लोबोडेरा स्पीसीज) और सामान्य दाग आदि। ऊंचे और अच्छे जल निकास वाले क्षेत्र में ही नेट हाउस का निर्माण करना उपयुक्त है। आलू के बीज उत्पादन के लिए, व्यावसायिक रूप से उपलब्ध 40-50 मेश आकार का नायलॉन जाल और जीआई पाइप द्वारा समर्थित सरल नेट हाउस सबसे किफायती और उपयुक्त है। ऐसे नेट हाउस में कीटों के प्रवेश को समाप्त करने के लिए एक-दूसरे के समकोण दो दरवाजे प्रवेश के लिए रखने चाहिए। इसके अलावा रेंगने वाले तथा अन्य कीटों के प्रवेश को रोकने के लिए नेट को पूरी तरह चार पक्षों पर मृदा के नीचे दबा देना चाहिए। लगभग एक फीट का ईंटों का बाड़ा बना देना चाहिए। नेट हाउस में कीट वेक्टर लोड को कम करने के लिए चारों तरफ का 01 मीटर का क्षेत्रफल सभी वनस्पतियों से मुक्त रखना चाहिए।

प्लांट सामग्री: लगाए जाने वाले माइक्रोप्लान्ट्स या मिनीट्यूबर्स प्रमाणित और वायरस से मुक्त होने चाहिए। नियम के अनुसार रोपण सामग्री को एक मान्यता प्राप्त प्रयोगशाला से एलिसा और पीसीआर के माध्यम से वायरस (पीवीएक्स, पीवीएन, पीवीवाई, पीवीएस, पीवीए, पीवीएम, पीएलआरवी और पीएसटीवीडी) के लिए परीक्षण किया जाना चाहिए।

भंडारण

मिनीट्यूबर को सितंबर के तीसरे या चौथे सप्ताह तक 4^0 सेल्सियस तापमान और 90 प्रतिशत आर्द्रता से अधिक के ठंडे भंडार गृह में भंडारण करके रखना चाहिए। रोपण (अक्टूबर के पहले या दूसरे सप्ताह) से 15-20 दिनों पहले ठंडे भंडार गृह से मिनीट्यूबर्स वापस निकाल लिए जाते हैं। वापस निकलने के बाद फिर से छंटाई करते हैं। इसमे 4-5 प्रतिशत मिनीट्यूबर सूखे हुए निकलते हैं। उचित छांटने के उपरांत इन्हें छाया वाली जगह को रखा जाता है। इसके उपरांत इनको अगली बीज पीढ़ी में लगाया जा सकता है।

उच्च तकनीक बीज उत्पादन प्रणालियों में बीज उत्पादन की अधिकतम वृद्धि की क्षमता है। नेट हाउस इस तकनीक का एक महत्वपूर्ण और अभिन्न भाग है। इसका सही प्रबंधन उच्च गुणवत्ता एवं रोग रहित बीज के उत्पादन के लिए आवश्यक है।

नीबूवर्गीय फसलों की समस्याएं तथा निदान

अनिल कुमार दुबे, विजय शंकर त्रिपाठी और **राधा मोहन शर्मा**
फल एवं औद्यानिकी प्रौद्योगिकी संभाग
भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

नीबूवर्गीय फसलों की कम उत्पादकता के कई कारण हैं, उनमें सबसे प्रमुख कारण समस्याओं को सही ढंग से नहीं पहचानना तथा निदान के सही तरीकों का प्रयोग न करना है। उदाहरणतया कई समस्याओं के लक्षण काफी मिलते-जुलते होते हैं, जैसे-नीबू का स्कैब रोग, नीबू का केंकर रोग, क्लोराइड की अधिकता तथा धूप जलन आदि। नीबूवर्गीय फसलों में होने वाली प्रमुख समस्याओं के प्रमुख लक्षणों को पहचानना आवश्यक है, जिससे इनका सही उपचार किया जा सके। इन फसलों के फलों, पत्तियों तथा तनों पर रोगों के लक्षण दिखाई पड़ते हैं।

अधिक रसायन के प्रयोग से फलों पर परगलित दाग

पोषक तत्वों के अधिक प्रयोग से मोटा छिलका तथा स्थूल फल

नीबूवर्गीय फसलें जैसे मीठी नारंगी, संतरा, किन्नो, नीबू, ग्रेपफ्रूट, टैंजीरिन तथा चकोतरा आदि हमारे देश के विभिन्न क्षेत्रों में उगाई जाती हैं। इनमें क्षेत्र तथा उत्पादन के अनुसार मीठी नारंगी, संतरा तथा नीबू प्रमुख फसलें हैं। हमारे देश की मिट्टी तथा जलवायु इन फसलों के उत्पादन के लिए काफी अच्छी मानी जाती है। इसके विपरीत हमारी उत्पादकता काफी कम है। राष्ट्रीय औद्यानिक बोर्ड की 2014 की रिपोर्ट के अनुसार नीबूवर्गीय फलों की बागवानी 1077.73 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में की जा रही है। प्रति हैक्टर उत्पादकता मात्र 10.34 टन है, जो कि दूसरे देशों की तुलना में काफी कम है।

पत्तियों पर दिखाई देने वाले लक्षण

प्यालीनुमा तथा मुड़ी हुई पत्तियां

नए कल्ले निकलने के समय नीबूवर्गीय फलों की पत्तियां मुड़कर प्यालीनुमा हो जाती हैं। पत्तियों का ऐसा आकार मुख्यत: माहूं, लीफ माइनर या पत्तीमोड़क कीट के आक्रमण के कारण होता है। वैसे तो यह कीट तथा पत्तियों का मुड़ना बहुत नुकसानदायक नहीं होता है। इन कीटों को नियंत्रित करने के लिए स्पीनोसेड या मोनोक्रोटोफॉस 4 मि.ली./10 लीटर पानी का घोल बनाकर नए कल्ले निकलते समय छिड़काव करें, दूसरा छिड़काव 15 दिनों के अंतराल पर करें।

पत्तियों का पीला पड़ना, गिरना तथा टहनी सूखना

प्राय: देखा गया है कि समय पर संतुलित मात्रा में उर्वरक तथा खाद का प्रयोग करने के बावजूद नीबूवर्गीय फलों के वृक्षों की पत्तियां पीली पड़कर गिरने लगती हैं। ऊपर की टहनी सूखने लगती है। यह प्राय: जड़ सड़ने के कारण होता है। यह बागों में पानी के जमाव के कारण तथा उचित जल निकास का प्रबंधन न होने के कारण होता है। ऐसी स्थिति से बचने के लिए बागों में उचित जल निकास का प्रबंध करें। वर्षा ऋतु में पेड़ों के चारों तरफ पानी इकट्ठा न होने दें। फाइटोफ्थोरा के नियंत्रण के लिए कवकनाशी रिडोमिल (2.5 ग्राम/लीटर पानी) का घोल बनाकर 40-50 लीटर पानी का घोल प्रति थाल में करें। इसके अलावा इसी सांद्रता के घोल का छिड़काव करें। बरसात से पहले तथा बाद में पेड़ों के तनों की बोर्डो पेस्ट से 3 फीट ऊंचाई तक पुताई करें। सिंचाई से पहले तनों के चारों तरफ मिट्टी चढ़ाएं।

पत्तियों का पीला पड़ना, किनारे झुलसना तथा पत्तियों का गिरना

पत्तियां कई कारणों से पीली पड़ जाती

बोरॉन की कमी से फलों का फटना

हैं। इनके उपचार के लिए सही लक्षण का ज्ञात होना आवश्यक है। पत्तियां पीली पड़ने के साथ उनके किनारे झुलसने लगें व बाहर से पट्टी की मुख्य शिरा की तरफ जाएं तो समझ जाना चाहिए कि बागों में लवणता की अधिकता है। ऐसी दशा में उर्वरकों का चयन सावधानी से करना चाहिए। इसके अलावा सड़ी गोबर की खाद, केंचुए की खाद या कम्पोस्ट खाद का प्रयोग अधिक मात्रा में करें। रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग कम मात्रा में करें। वृक्षों के चारों तरफ जमीन में पेक्लोब्यूटाजाल 250 मि.ग्रा./लीटर पानी का प्रयोग वर्ष में एक बार अवश्य करें। अगर पी-एच तथा विद्युत चालकता की बाग की मिट्टी में अधिकता हो तो वर्षा ऋतु में जिप्सम का भी प्रयोग कर सकते हैं। नीबूवर्गीय वृक्षों की बागवानी के लिए 6.4 से 7.4 पी-एच मान तथा 0.5 डेसी सीमेन/मीटर से कम विद्युत चालकता अच्छी मानी जाती है। इसके अलावा सिंचाई जल में लवण की सांद्रता 750 मि.ग्रा./लीटर से कम होनी चाहिए।

पत्तियों का पीला पड़ना

पत्तियों का पीला पड़ना तथा पीलापन शिराओं तक सीमित होना

वैसे तो नीबूवर्गीय फलों की पत्तियां कई कारणों से पीली पड़ती हैं। पत्तियों का पीलापन शिरा तक सीमित होना जड़ सड़न के लक्षण होते हैं। यह दशा वर्ष में कभी भी आ सकती है। ऐसे लक्षण दिखाई देने पर पेड़ों के थालों में रिडोमिल (2.5 ग्राम/लीटर पानी) तथा अलीट (5 ग्राम/लीटर पानी) के घोल का प्रयोग तुरंत करें। इस क्रिया को कई बार करने

धूपजलन से प्रभावित फल

फलों पर दिखाई देने वाले लक्षण

अपरिपक्व छिलका रंजक

अपरिपक्व फलों के छिलकों का रंग पीला पड़ने लगता है। इन लक्षणों की शुरूआत सामान्यत: गर्मियों के मध्य में होती है। गर्मियों के अंत में इस प्रकार के फल बहुतायत में दिखाई देते हैं। अपरिपक्व छिलके के रंजक का प्रमुख कारण पादप बग है। इस प्रकार के लक्षण दिखाई पड़ें तो पादप बग को नियंत्रित करने के लिए रोगार (2.0 मि.ली./लीटर पानी) कीटनाशी का प्रयोग करें।

फलों के छिलके में झुर्रियां पड़ना

इस प्रकार के लक्षण फलों पर बसंत ऋतु (मार्च-अप्रैल) में दिखाई पड़ने लगते हैं। ये लक्षण तुड़ाई के समय ही पता चलते हैं। इससे ग्रसित फलों की बाजार में अच्छी कीमत नहीं मिलती है। यह एक दैहिक विकार है, जो अनियमित सिंचाई तथा असंतुलित उर्वरकों के प्रयोग से होता है। पकने के समय फलों के छिलके पर झुर्रियां न पड़ें इसलिए समय पर सिंचाई तथा संतुलित मात्रा में खाद तथा उर्वरकों का सही प्रयोग करना चाहिए। पूर्ण विकसित संतरे तथा मीठी नारंगी के पौधों में 600:400:600 ग्राम नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश का प्रतिवर्ष प्रति पौधा प्रयोग करें।

फलों की त्वचा पर दाग

ये लक्षण कीटनाशी या फफूंदीनाशी का छिड़काव सामान्य सांद्रता से अधिक मात्रा में प्रयोग करने से होते हैं। इस प्रकार के लक्षण फलों के छिलके तथा निचले भाग में रसायन के छिड़काव करने के बाद दिखाई देते हैं। इसके बचाव के लिए छिड़काव में प्रयोग होने वाले रसायन की संतुलित मात्रा तथा छिड़काव की संख्या को नियंत्रित करके किया जा सकता है।

मोटा छिलका तथा स्थूल फल

इस विकार में फलों का छिलका मोटा होने के साथ फलों का आकार भी अत्यधिक बड़ा हो जाता है। साधारणत: ये लक्षण फल तुड़ाई के समय दिखाई पड़ते हैं। इस विकार का मुख्य कारण पेड़ों का अधिक ओजस्वी होना है। तुड़ाई के समय अच्छी गुणवत्ता वाले फल प्राप्त करने के लिए बागों में पोषक तत्वों का प्रयोग सही समय पर तथा उचित मात्रा में करना चाहिए। अधिक नाइट्रोजन के प्रयोग से पौधे ओजस्वी हो जाते हैं, इसलिए नाइट्रोजन का प्रयोग सही मात्रा में करें।

फलों का फटना

फलों का फटना नीबूवर्गीय फलों की एक प्रमुख समस्या है। इनमें नीबू (लेमन), मौसमी, टैन्जीरिन अति संवेदनशील फसलें हैं। फल प्राय: मृदा या वातावरण नमी, आर्द्रता में उतार-चढ़ाव के कारण फटते हैं। प्राय: देखा गया है कि अगर लंबे सूखे अंतराल के बाद अचानक मृदा में नमी बढ़ जाती है या वातावरण में सापेक्षिक आर्द्रता अचानक बढ़ जाती है तो पेड़ अधिक पानी अवशोषित करते हैं। वाष्पन कम होने के कारण फलों के अंदर पानी की मात्रा बढ़ जाती है। इसकी तुलना में बाहरी त्वचा का फैलाव नहीं होता है परिणामस्वरूप त्वचा फट जाती है। इसको नियंत्रित करने के लिए गर्मियों में नियमित सिंचाई करें। पत्ती ऊतक विश्लेषण कराने के बाद बोरॉन की कमी होने पर 0.4 प्रतिशत बोरॉन का पर्णीय छिड़काव करें।

लवणता के कारण पत्तियों के किनारे झुलसना

से इस रोग की रोकथाम संभव है। इसके अलावा उपरोक्त फफूंदनाशी का छिड़काव पत्तियों तथा शाखाओं पर अवश्य करें। जल निकास की उचित व्यवस्था तथा बरसात से पहले तथा बाद में तनों पर 2-3 फीट तक बोर्डो पेस्ट (1 कि.ग्रा. कॉपर सल्फेट/5 लीटर पानी तथा 1 कि.ग्रा. चूना/5 लीटर पानी) की लेप लगाने से इस रोग को फैलने से रोका जा सकता है।

पेड़ पर लक्षण

पत्तियां पीली शिरायुक्त, तने तथा टहनी से गोंद का निकालना

प्राय: देखा गया है कि पौधों में पत्तियां कम रह जाती हैं तथा जो बचती हैं वे पीली शिरायुक्त होती हैं। इसके अलावा जमीनी सतह पर तने की लकड़ी सूखी दिखाई देती है। पौधों में ऐसे लक्षण दिखाई पड़ें तो समझना चाहिए कि पौधा जड़ गलन रोग से प्रभावित है। यह फफूंद पौधों पर वर्ष में कभी

तने तथा टहनी से गोंद निकलना

भी आक्रमण कर सकती है। इसके निदान के लिए सूखे ऊतक को पौधों से काटकर निकाल देना चाहिए। कटी जगह बोर्डोपेस्ट (1 भाग कॉपर सल्फेट, 2 भाग चूना तथा 3 भाग अलसी का तेल) लगाना चाहिए।

कणिकायन विकार

फाइटोफ्थोरा कवक से प्रभावित पौधा

इस विकार में नीबू में पाए जाने वाला रस प्रभावित होता है। इसमें नीबू बड़े तथा धूसर रंग के दिखाई पड़ते हैं। इनका स्वाद बिगड़ जाता है। यह रोग वर्षा ऋतु में अधिक तापमान, नमी, लगातार सिंचाई और नाइट्रोजन की अधिकता के कारण होता है। इससे बचने के लिए सिंचाई का सही प्रबंधन, नाइट्रोजन की सही मात्रा देना तथा अगस्त से अक्टूबर के बीच में सूक्ष्म पोषक तत्व-जस्ता, कॉपर, पोटेशियम 0.25 प्रतिशत प्रति माह का पर्णीय छिड़काव अच्छा रहता है।

यदि फल उत्पादक समय से सावधानी बरतें तो इन समस्याओं का निदान सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इससे अच्छी आय प्राप्त कर सकते हैं।

धूप जलन

यह विकार नीबूवर्गीय फलों में मुख्यत: लेमन और चकोतरा पर प्रभाव डालता है। यह विकार धूप के सीधे पौधों पर पड़ने व गर्म हवाओं के कारण हो जाता है। वाष्पोत्सर्जन अधिक होने के कारण पत्तियों के किनारे जले हुए दिखाई देने लगते हैं। बाद में पूरी पत्ती भूरे रंग की हो जाती है। इसी प्रकार फलों की सतह पर भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं। इससे फलों का बाजार भाव गिर जाता है। इस विकार से बचने के लिए नमी सुरक्षित रखने वाले मूलवृंतों का प्रयोग करते हैं। गर्म हवाओं और तेज धूप से बचाने के लिए वायुरोधक पट्टियों का प्रयोग करते हैं। साथ ही सिंचाई भी नियमित अंतराल पर करते हैं।

मुजफ्फरपुर की शाही लीची

ढाई साल के लंबे इंतजार के बाद विश्व व्यापार संठगन ने मुजफ्फरपुर की लीची को जीआई टैग प्रदान करके विश्वस्तरीय पहचान दी है। सही लीची की मिठास दुनिया में फैलाने के लिए बिहार और मुजफ्फरपुर का नाम अब विश्व पटल पर होगा। इस काम को बिहार लीची उत्पादन संघ द्वारा जून 2016 में कार्यान्वित किया गया। संघ ने यह कार्य जीआई रजिस्ट्री कार्यालय चेन्नई में आवेदन द्वारा किया व बिहार कृषि विश्वविद्यालय सबौर के शोध निदेशक एवं डा. रूबी ने इसके 100 वर्षों के इतिहास को खंगालने के बाद आवेदकों से इस विषय पर गहन चर्चा कर इसे पुख्ता किया।

जीआई टैग 10 साल से बनाए जाने वाले विशिष्ट उत्पादों (कृषि, प्राकृतिक, हस्तशिल्पी और औद्योगिक सामान) को दिया जाता है। यह अभी तक 2004-05 में दार्जिलिंग की चाय से शुरूआत कर 2017 तक 295 उत्पादों को मिल चुका है। इससे किसानों को बहुत फायदा पहुंचा है। यह भारत सरकार के चेन्नई स्थित ताग मुख्यालय से प्राप्त होता है।

शाही लीची रसीली और सुगंधित होने के साथ-साथ मिठास से भरी होती है। इसके बीज छोटे होते हैं। इसका 80 प्रतिशत भाग पल्प से भरा होता है। भारत में इसका उत्पादन होता है। केवल बिहार में ही 32,000 हैक्टर में इसका उत्पादन 6 लाख टन होता है। मुजफ्फरपुर में इसका उत्पादन 9,840 हैक्टर में होता है। मुजफ्फरपुर, समस्तीपुर, वैशाली व पूर्वी चंपारण लीची के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र हैं।

प्रमुख खाद्य उपयोगी प्याजवर्गीय फसलें

अश्विनी प्र. बेनके* और **विजय महाजन***
भाकृअनुप-प्याज एवं लहसुन अनुसंधान निदेशालय, राजगुरूनगर, पुणे, (महाराष्ट्र)

विश्व भर में लोगों द्वारा आजीविका, स्वाद और औषधीय प्रयोजनों के लिए प्याज, लहसुन एवं अन्य प्याजवर्गीय फसलों की खेती सदियों से की जा रही है। प्याज में ऑर्गोसल्फर कंपाउंड की उपस्थिति सभी प्याजवर्गीय फसलों का प्रमुख गुण है। यह अन्य जंगली और खेती योग्य फसलों की तुलना में प्याजवर्गीय, फसलों को एक विशिष्ट पहचान भी देती है। विभिन्न प्याजवर्गीय फसलों में आर्थिक रूप से सबसे महत्वपूर्ण खाद्य उपयोगी प्याजवर्गीय (*एलियम सेपा* एल), जापानीज बंचिग प्याज (*ए. फिस्टुलोसम* एल), लीक (*ए. एम्प्लोप्रासम स्पेसिज. पोर्रम* एल), लहसुन (*ए. सटाव्हम* एल) आदि हैं। इन प्रजातियों को अधिकतर मसालों के रूप में उपयोग किया जाता है, लेकिन इनमें औषधीय गुण भी होते हैं।

प्याजवर्गीय *एलियम सेपा*

दुनिया में मुख्यत: सात प्रमुख प्याजवर्गीय फसलें उपयोग में लाई जाती हैं। इसकी विस्तृत जानकारी निम्नानुसार दी गई है:

एलियम सेपा

इसमें प्याज और शैलट उपसमूह होते हैं। *एलियम सेपा* को हैनेलट (1990) ने दो बागवानी समूहों में बांटा था, सामान्य प्याज समूह और दूसरा एग्रीगेटम समूह। सामान्य प्याज समूह में सामान्य कंद वाले प्याज शामिल हैं। एग्रीगेटम समूह को उसकी उपप्रजातियों और कुछ किस्मों में वर्गीकृत किया गया है। इसमें छोटे-छोटे कंद गुच्छे के रूप में बनते हैं। इन एग्रीगेटम समूह का विभाजन आगे मल्टीप्लायर या आलू प्याज और शैलट में किया गया है। मल्टीप्लायर प्याज समूह में सबसे छोटे कंद होते हैं। ये आकार में छोटे और चौड़े होते हैं तथा जमीन के नीचे बनते हैं। शैलट समूह में कंद छोटे, संकीर्ण मगर अलग-अलग तथा जमीन के नीचे बनते हैं (जोन्स और मान, 1963)। एग्रीगेटम समूह में अधिकांश पौधों को बागवानी के उपयोग के लिए प्रचारित किया जाता है।

प्याज के पौधे में कंद का निर्माण दिनों की विशिष्ट लंबाई और तापमान पर निर्भर करता है। इस प्रकाश अवधि में आवश्यकता के अनुसार प्याज को दो प्राथमिक श्रेणियों में बांटा गया है। पहली श्रेणी में लंबे प्रकाश की अवधि वाली और दूसरी छोटी प्रकाश अवधि वाली प्याज। लंबे प्रकाश की अवधि वाले (लंबे दिनों वाली) प्याज के पौधे को कंद बनाने के लिए कम से कम चौदह घंटों (वास्तव में रात की लंबाई दस घंटे से कम हो) की आवश्यकता होती है। छोटे दिनों वाले प्याज के पौधों को दिन की लंबाई अवधि की आवश्यकता बारह से चौदह घंटे के बीच होती है। लंबे दिनों वाली प्याज की फसल को उत्तरी अक्षांशों में उगाया जाता है। इसकी खेती अक्सर बीज या प्रत्यारोपण पद्धति से बसंत में की जाती है। छोटे दिनों वाले प्याज में सामान्यत: अधिक तापमान वाले महीनों के दौरान कंद का निर्माण होता है। इसकी खेती बीज या प्रत्यारोपण पद्धति से रबी, खरीफ और पछेती खरीफ में की जाती है।

एलियम फिस्टुलोसम

चीन और जापान के लोगों के आहार में *एलियम फिस्टुलोसम* प्याज प्रजाति एक प्रमुख घटक है। यह प्रारंभिक विकास की अवस्था के दौरान (पत्तों की विकास

*वैज्ञानिक (पादप आनुवंशिकी एवं प्रजनन)

एलियम फिस्टुलोसम प्रजाति के प्याज

अवस्था) सामान्य कंद वाले प्याज के समान दिखाई देता है। इस प्याज प्रजाति में कंद नहीं बनते हैं। बल्कि इन्हें हरे पत्तों प्रमुखतः मांसल डंठल के लिए उपयोग में लाया जाता है। *एलियम फिस्टुलोसम* प्रजाति का विकास जंगली एलियम अल्टेइकम से होने की संभावना है। यह दक्षिणी साइबेरिया और मंगोलिया के पहाड़ों में उगता हुआ पाया गया है जो कि *ए. फिस्टुलोसम* के साथ प्रजनन अनुकूलित भी है। बाजार में आवश्यकता के अनुसार *एलियम फिस्टुलोसम* की खेती विकसित की गई है। इन वर्गों को मुख्य रूप से भौगोलिक क्षेत्रों में, जिसमें पौधे उगाए जा सकते हैं और पत्तों की गुणवत्ता के आधार पर विभाजित किया जाता है। कुछ उपभोक्ताओं को हरे रंग के स्यूडोस्टेम्स (मांसल डंठल) की बजाय 'ब्लैंचेड' (प्रक्रिया किया हुआ) स्यूडोस्टेम्स पसंद हैं। एलियम फिस्टुलोसम की खेती में विकासशील पौधों को मिट्टी से ढका जाता है। इससे क्लोरोफिल की मात्रा कम हो जाती है। इससे अधिक मुलायम, हल्का रंग का स्यूडोस्टेम्स (मांसल डंठल) तैयार होता है।

एलियम स्चिनियोप्रासम

एलीयम स्चिनियोप्रासम (चाईव) एशिया और अमेरिका में जंगली जाति जैसी दिखाई देती है। यह सबसे व्यापक रूप से वितरित एलियम प्रजातियों में से एक है। यह बेहद ठंडी-सहनशील और सर्दियों में निष्क्रिय रहने वाली प्रजाति है। इसकी 70° अक्षांश में भी खेती हो सकती है (ब्रूस्टर, 1994)। चाईव को हरे रंग की पत्तियों के लिए उगाया जाता है। इसका मसाले के रूप में भी उपयोग किया गया है। चाईव धीमे बढ़ते हुए संकीर्ण एवं खोखले पत्तों से एक समूह (गुच्छों) का निर्माण करते हैं। दो या तीन पत्तियों का गठन होने के बाद, इनका विकास डालियों के बाजू वाली (एक्सेलरी) कलियों की तरफ बढ़ जाता है। इससे राइजोम्स का मोटी कंद जैसी मगर थोड़ी पतली जड़ें के समूह (गुच्छों) के रूप में विकास होता है।

मोती (पर्ल) प्याज

मोती (पर्ल) प्याज यूरोप के कुछ हिस्सों में उगने वाली एक छोटी सी एलियम प्रजाति वाली फसल है। इसके पौधे छोटे, कंद गोलाकार, सफेद छिलके वाले शल्क कंद का एक गुच्छ होते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में मोती का प्याज के रूप में उत्पादन वास्तव में असली मोती प्याज की बजाय सामान्य प्याज (ए सेपा) के छोटे कंद के रुप में हो सकता है। अमेरिकी बागवानी में, सच्चे मोती प्याज को अक्सर पुर्तगाल लीक कहा जाता है।

एलियम एम्प्लोप्रासम

एम्प्लोप्रासम समूह में चार प्रमुख फसलें (लीक, कुरत, ग्रेट हेडेड लहसुन और मोती प्याज) शामिल हैं। जंगली ए. एम्प्लोप्रासम, पुर्तगाल से पश्चिम में भूमध्यसागरीय देशों

एलियम ट्यूबरोसम

एलियम ट्यूबरोसम प्रजाति के लहसुन के पौधे

एलियम ट्यूबरोसम पूर्वी एशिया में जंगली प्रजाति जैसा बढ़ता पाया जाता है। इस लहसुन की खेती स्वाद वाली पत्तियों और अपरिपक्व फूलों के लिए की जाती है। यह राइजोम्स (मोटी कंद जैसी मगर थोड़ी पतली जड़ें) *एलियम स्चिनियोप्रासम* (चाईव) के समान बनाता है और पत्तियां इन राइजोम्स (ब्रूस्टर, 1994) से घने समूह (गुच्छों) के रूप में बढ़ती हैं। *एलियम स्चिनियोप्रासम* (चाईव) के पत्ते अंदर से खोखले होते हैं, परंतु *एलियम ट्यूबरोसम* (चीनी चाईव) के पत्ते फ्लैट होते हैं। इसमें ठोस स्केप (पुष्पवृंत) तथा अम्बेल (पुष्पगुच्छ) आते हैं, जिस पर सफेद आकर्षक फूल होते हैं।

एलियम एम्प्लोप्रासम

लहसुन की प्रजाति *एलियम सटाव्हम*

एलियम चाइनेन्स

से होते हुए पूर्वी ईरान में लोकप्रिय हुआ। लीक ग्रुप का स्यूडोस्टेम उसकी विशेषता है। यह वास्तव में लीक पौधे का खाद्य हिस्सा है। लीक की खेती के लिए ठंडा प्रदेश अनुकूल है और उत्तरी यूरोप में उसे अधिक मात्रा में उगाया जाता है। कंद वाले प्याज के विपरीत, लीक में सूडोस्टेम के गठन के लिए विशिष्ट फोटोपीरियड (प्रकाशकालावधि) की आवश्यकताएं नहीं हैं। इस प्रकार इसे अक्षांशों की एक विस्तृत शृंखला में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

बड़े आकार वाले एम्प्लोप्रासम के लहसुन वाले समूह में लहसुन के समान बड़ी आकार की कलियां बनती हैं, हालांकि पुष्प क्रम काफी बड़ा होता है और लीक की तरह होता है। इस लीक को कई व्यावसायिक उत्पादकों द्वारा हाथी लहसुन के नाम से जाना जाता है। इसमें आमतौर पर लहसुन पौधों की तुलना में बहुत बड़ा कंद बनता है। फूलों के डंठल के आधार पर छः बड़ी कलियों तक का उत्पादन हो सकता है। पौधे में फूल नहीं बनते। केवल एक ही बड़ी कली बनती है, जो कि 'एक कली वाले लहसुन' के रूप में जाना जाता है।

एलियम सटाव्हम

लहसुन, केंद्रीय एशियाई पहाड़ी क्षेत्रों में पैदा हुआ है। प्याज और *ए. लोंगिकुस्पस* आरजीएल को लहसुन *(ए. सटाव्हम)* के निकटतम जंगली कुल के रूप में जाना जाता है। लहसुन में बीज न बनने के कारण कलियों के द्वारा कलिकीय प्रजनन होता है। ताईवान के पहाड़ी इलाकों में इसकी कुछ उपजाऊ बीज उत्पादक प्रजातियां पाई गई हैं। लहसुन में वास्तविक बीज का उत्पादन कई कारणों से महत्वपूर्ण है। इनमें बीज प्रजनन के माध्यम से वायरल रोगों के प्रसार को कम करने और बेहतर गुणों वाली लहसुन की प्रजातियां प्रजनन करके विकसित करने की संभावना को बढ़ावा मिल सकता है।

***एलियम चाईनेन्स* (रेक्कीओ)**

ए. चाईनेन्स मुख्य रूप से जापान और चीन में उगाया जाता है। इसके छोटे-छोटे खाने योग्य कंद ज्यादातर अचार तैयार करने में उपयोग किए जाते हैं। *ए. चाईनेन्स* के पौधे *ए ट्यूबरोसम* के समान दिखते हैं। इनके फूलों के डंठल और पत्तियां अलग होती हैं। ये पतले पारदर्शी त्वचा (छिलका) के साथ मटमैले-सफेद या बैंगनी रंग के होते हैं। *ए. चाइनेन्स* (रक्कीओ) के एक (अबेंल) पुष्पगुच्छ में 6-30 बैंगनी रंग के फूल होते हैं। ■

भाकृअनुप की लोकप्रिय पत्रिका 'फल फूल' मार्च-अप्रैल, 2019 अंक के प्रमुख आकर्षण

- फल खायें: रोग दूर भगाएं
- करौंदा: शुष्क क्षेत्र में किसानों की अतिरिक्त कमाई
- सहजन: प्राकृतिक औषधि का भंडार
- धनिया की उन्नत खेती
- अमरूद की बागवानी
- सिक्किम में इलायची की जैविक खेती
- उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में कुरमुला कीट की समस्या एवं समेकित प्रबंधन
- शुष्क क्षेत्रीय फलों की बागवानी-प्राकृतिक संसाधन संरक्षण के साथ आर्थिक उन्नति
- कैथा की खेती
- टमाटर मूल्य संवर्धन
- बुन्देलखंड में खरीफ प्याज उत्पादन की संभावनाएं एवं उसकी महत्ता

संपर्क सूत्र: व्यवसाय प्रबंधक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, कैब-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-12 (दूरभाष: 25843657)

चिरौंजी नट प्रसंस्करण की उन्नत विधि

पी.के. निशाद[1], **एस.पटेल**[2], **आर.के. नायक**[3] और **एन.के. मिश्रा**[4]

चिरौंजी नट में उसके साबुत दाने भी शामिल हैं। पारंपरिक रूप से इसे हथौड़े, पत्थर या पत्थरों से बनी चक्की द्वारा अलग किया जाता है। ये विधियां किसानों के लिए बहुत कठिन, अधिक मशक्कत वाली व अनौपचारिक हैं। इसी कारणवश प्रायः निम्न गुणवत्ता वाले उत्पाद के साथ टूटे हुए दाने अधिक प्राप्त होते हैं। इस समस्या को दूर करने के लिए इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर द्वारा चिरौंजी नट प्रसंस्करण के लिए एक यंत्र का विकास किया गया है। इस यंत्र में मुख्य ढांचा, हॉपर, छिलाई इकाई, गोलाकार चक्की का आवरण, विद्युत मोटर, छन्नी आदि मुख्य भाग हैं। इस यंत्र के परीक्षण से यह पता चला कि इसकी छिलाई दक्षता 93.90 प्रतिशत एवं क्षमता 32.82 कि.ग्रा. प्रति घंटे की है। इस विधि में 16 प्रतिशत साबुत चिरौंजी दाने एवं 2 प्रतिशत टूटे हुए दाने प्राप्त हुए। यह यंत्र छोटे किसानों, उद्यमियों, स्वयं सहायता समूह, जनजातीय समूह आदि के लिए सबसे अधिक उपयोगी है। इस विधि में परंपरागत विधि की तुलना में प्रसंस्करण की लागत एवं समय बहुत कम लगता है।

चिरौंजी को चारोली के नाम से भी जाना जाता है। इसका उपयोग भारतीय पकवानों जैसे-खीर, हलवा आदि में किया जाता है। इसके वृक्ष अधिकतर सूखे पर्वतीय प्रदेशों में पाए जाते हैं। भारत में ये वृक्ष विशेष रूप से दक्षिण भारत, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, ओडिशा, झारखंड, बिहार, उत्तर प्रदेश, गुजरात और राजस्थान के कुछ क्षेत्रों में पाए जाते हैं। छत्तीसगढ़ प्रदेश में यह वृक्ष प्राकृतिक रूप से दक्षिण बस्तर (दंतेवाड़ा) से लेकर उत्तर बस्तर (कांकेर) एवं मध्य क्षेत्र के कई जिलों में देखा जा सकता है। बस्तर संभाग इसका सबसे बड़ा क्षेत्र है। चिरौंजी के वृक्ष लगभग 10-15 मीटर ऊंचाई तक पाए जाते हैं। नवंबर में ही इसमें फूल आने शुरू हो जाते हैं। इसके फल 4-5 महीने में परिपक्व हो जाते हैं। अप्रैल-मई में इसकी कटाई कर ली जाती है। भंडारण के समय इसकी ऊपरी परत हरे से काले रंग में परिवर्तित हो जाती है। इसे छिलाई करने से पूर्व निकाल लिया जाता है। परत को काटने के लिए फल को सादे पानी में रात भर के लिए भिगोया जाता है तथा हथेलियों के बीच या जूट के बोरे में रखकर रगड़ते हैं। साफ किए हुए फल (चिरौंजी नट) को धूप में 2-3 दिनों के लिए सुखाया जाता है। इन्हें प्रसंस्करण के लिए संग्रहीत करके रखा जाता है। वनक्षेत्र में रहने वाले आदिवासी किसान चिरौंजी के फल एवं इसके नट के महत्व व मूल्य से अनजान हैं। वे इसके फल को खाकर इसके कीमती नट को यूं ही फेंक देते हैं। इसके बारे में थोड़ा बहुत ज्ञान रखने वाले इसे एकत्र कर नगरों एवं कस्बों के चतुर व्यापारियों के हाथों औने-पौने दामों में ही बेच देते हैं। आज बाजार में इस मूल्यवान नट की कीमत 100-110 रुपये प्रति कि.ग्रा. एवं नट से निकलने वाले साबुत चिरौंजी दाने की कीमत 900-1000 रुपये प्रति कि.ग्रा. तक है।

[1]वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता, भाकृअनुप-केंद्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान भोपाल (मध्य प्रदेश); [2]प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, [4]सहायक प्राध्यापक, कृषि प्रसंस्करण व खाद्य अभियांत्रिकी विभाग; [3]सह-प्राध्यापक, कृषि मशीनरी एवं शक्ति विभाग; इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)

चिरौंजी का वृक्ष

चिरौंजी नट प्रसंस्करण के लिए विकसित उन्नत विधि

इस यंत्र के मुख्यतः तीन भाग हैं, जैसे-मुख्य ढांचा, छिलाई इकाई एवं विभाजक। इस यंत्र से एक व्यक्ति एक दिन (8 घंटा) में औसतन 100-200 कि.ग्रा. चिरौंजी नट का प्रसंस्करण कर सकता है। एक कि.ग्रा. नट के प्रसंस्करण से 150-200 ग्राम तक चिरौंजी के दाने प्राप्त होते हैं। यह चिरौंजी नट की गुणवत्ता पर भी निर्भर करता है।

यंत्र संबंधी तकनीकी जानकारी

यंत्र की लंबाई	: 1800 मि.मी.
यंत्र की चौड़ाई	: 620 मि.मी.
यंत्र की ऊंचाई	: 1560 मि.मी.
शक्ति स्रोत	: विद्युत मोटर, 1 अश्वशक्ति
छिलाई क्षमता	: 30-35 कि.ग्रा. प्रति घंटा
छिलाई दक्षता	: 93 प्रतिशत

यंत्र के मुख्य भागों की बनावट

- **मुख्य ढांचाः** मुख्य ढांचा नरम स्टील से बना है, जो आकार में आयताकार होता है। ढांचे की कुल लंबाई 630

मि.मी., चौड़ाई 620 मि.मी. व ऊंचाई 910 मि.मी. है, जो 50×5 मि.मी. कोण से बनी है। निचले हिस्से पर एक अन्य ढांचा है, जो 35×5 मि.मी. कोण से बना है। इस पर यंत्र के सभी घटक जैसे शॉफ्ट, विद्युत मोटर एवं मुख्य चरखी को वेल्डिंग से जोड़ा गया है। मुख्य ढांचा यंत्र के लिए आधार एवं कार्य संचालन के दौरान कंपन का सामना करने के लिए कठोरता प्रदान करता है।

- **छिलाई इकाई:** हॉपर, गोलाकार की दो चक्की (पत्थरों से बनी खुरदरी सतह वाली) एवं 18 गेज मोटी नरम स्टील से बनी चक्की का आवरण छिलाई इकाई का मुख्य भाग है। हॉपर की बनावट ऊपर की ओर आयताकार एवं नीचे की ओर समलंबाकार है, जो अपने अंतर्निहित गुण के कारण चिरौंजी नट भरने के लिए उपयुक्त है। इसका ऊपरी आयाम 380 मि.मी. लंबा व 380 मि.मी. चौड़ा तथा निचला आयाम 110 मि.मी. लंबा व 110 मि.मी. चौड़ा है। हॉपर की कुल ऊंचाई 500 मि.मी. है। हॉपर को चक्की के आवरण पर ऊर्ध्वाधर वेल्डिंग करके जोड़ा गया है। चिरौंजी नट गुरूत्वाकर्षण बल की सहायता से आसानी से छिलाई इकाई में चला जाता है। पत्थर की इन दो चक्कियों में से एक स्थिर तथा दूसरी 240 चक्र प्रति मिनट की गति से घूर्णन करती है। चक्र के बीच का अंतर परिवर्तनीय है। इसे चिरौंजी नट के आकार के अनुसार कम या ज्यादा कर सकते हैं।
- **विभाजक:** विभाजक की कुल लंबाई 1000 मि.मी. एवं चौड़ाई 610 मि.मी. की है। इसका मुख्य कार्य चिरौंजी के साबुत दाने को मिश्रण से अलग करना है। विभाजक में 890 मि.मी. लंबी व 560 मि.मी. चौड़ी आकार वाली 22 गेज मोटी नरम स्टील से बनी 4 अलग-अलग छन्नियां एक के ऊपर एक लगी होती हैं। विभाजक एक छड़ की सहायता से मुख्य शॉफ्ट

चिरौंजी के फल

सारणी 1. चिरौंजी के फल एवं दाने के रासायनिक घटक

गुण	फल	दाने
नमी की मात्रा (प्रतिशत)	74.3	3.0
प्रोटीन (प्रतिशत)	2.2	19.3
वसा (प्रतिशत)	0.8	59.1
खनिज (प्रतिशत)	1.7	3.0
फाइबर (प्रतिशत)	1.5	3.8
कार्बोहाइड्रेट (मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम)	19.5	12.1
कैल्शियम (मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम)	78.0	2.7
फॉस्फोरस (मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम)	28.0	5.3
उष्मीय मान (किलो कैलोरी)	94.0	650

चिरौंजी के नट

सावधानियां

- यंत्र शुरू करने से पहले यह जांच लें कि इसके सभी भागों के नट-बोल्ट अच्छी तरह से कसे हुए एवं कंपनमुक्त हैं।
- मुख्य चरखी को हाथ की सहायता से घुमाकर यह सुनिश्चित कर लें कि यंत्र की छिलाई इकाई व अन्य घूमने वाले भागों में कोई बाधा तो नहीं है।
- चिरौंजी नट को हॉपर में डालने से पहले यंत्र को कुछ सेकंड तक चलाकर देखें ताकि यह सुनिश्चित हो जाए कि पत्थर का चक्र निर्दिष्ट दिशा में घूम रहा है।
- सुनिश्चित कर लें कि यंत्र उचित वोल्टेज के साथ संचालित है।
- जांच ले कि चिरौंजी नट अच्छी तरह से साफ-सुथरी है, किसी भी प्रकार के कंकड़, पत्थर, लोहे व लकड़ी के टुकड़े आदि नहीं हैं।
- ज्यादा ढीले कपड़े पहनकर कार्य न करें। इससे दुर्घटना होने की आशंका बनी रहती है।
- चिरौंजी नट के आकार के अनुसार चक्की के बीच की दूरी को सुनिश्चित कर लें।
- चिरौंजी दाने एवं छिलके को एकत्र करने के लिए विभाजक के सभी निकास के हिस्सों में पात्र रखे होने चाहिए।

नट छिलाई यंत्र

चिरौंजी नट प्रसंस्करण की पारंपरिक विधियां

उचित प्रसंस्करण की विधि ज्ञात न होने के कारण वन क्षेत्र के आदिवासी लोग इसका प्रसंस्करण (नट से साबुत दाने अलग करने की प्रक्रिया) पत्थरों से तोड़कर या हस्तचालित पारंपरिक यंत्र से करते हैं। इसमें श्रम और समय दोनों अधिक लगता है। इस प्रक्रिया में चिरौंजी दानों के टूटने की आशंका बनी रहती है। इससे इसके मूल्य में गिरावट आ जाती है।

पारंपरिक विधि में चिरौंजी नट को अपने हाथ की दो उंगलियों के बीच में रखकर हथौड़े या पत्थर की सहायता से तोड़ा जाता है। इससे नट दो भागों में अलग हो जाते हैं और साबुत दाने बाहर आ जाते हैं। यह विधि बहुत ही जोखिम वाली है। इसमें उंगलियों को चोट लगने की आशंका बनी रहती है। इसके अलावा इस विधि से व्यक्ति निरंतर काम नहीं कर सकता। औसतन एक व्यक्ति एक दिन में 1 से 2 कि.ग्रा. नट से ही दाने निकाल पाते हैं।

एक अन्य पारंपरिक विधि में पत्थरों से बनी चक्की का उपयोग कर चिरौंजी नट से दाने निकाले जाते हैं। यह पत्थर की चक्की 70-80 मि.मी. की मोटाई व 450-500 मि.मी. की गोलाई वाले दो पत्थरों से बनी होती है। इसमें नीचे वाला पत्थर स्थिर रहता है एवं ऊपर का पत्थर घूर्णन करता है। नट को चक्की के बीच में से डाला जाता है। ऊपर के पत्थर को लकड़ी के हैंडल की सहायता से घुमाया जाता है। इस विधि में टूटे हुए दाने अधिक प्राप्त होते हैं। एक व्यक्ति एक दिन में सिर्फ 15 से 20 कि.ग्रा. ही चिरौंजी नट का प्रसंस्करण कर पाता है।

से जुड़ा रहता है। यह दोलन गति से गतिशील होती है। छिलाई इकाई से निकलने वाले छिलके और दाने का मिश्रण विभाजक की छन्नी से होते हुए गुजरता है। अंत में निकास से साबुत चिरौंजी दाने, टूटे दाने, छिलके और आंशिक रूप से छिले हुए नट अलग-अलग प्राप्त होते हैं।

यंत्र का रखरखाव

- कार्य समाप्त होने के पश्चात, यंत्र के सभी भागों को अच्छी तरह से साफ करना चाहिए।
- विभाजक की छन्नी को साफ करना चाहिए ताकि अगले दिन कार्य के समय विभाजन में बाधा उत्पन्न न हो।
- आवश्यक भागों को समय-समय पर तेल व ग्रीस से स्नेहक कर लेना चाहिए।
- क्षतिग्रस्त भागों की जांच कर उनकी मरम्मत तुरंत कर दें।
- कभी भी घर्षण पाउडर का उपयोग न करें। यह नरम स्टील व अन्य भागों को नुकसान पहुंचाता है।
- उपयोग न होने पर, यंत्र को बंद ही रखें।

परिणाम एवं विवेचना

- इस यंत्र के परीक्षण से यह पता चला कि इसकी छिलाई दक्षता 93.90 प्रतिशत एवं क्षमता 32.82 कि.ग्रा. प्रति घंटे की है। इस विधि में 16 प्रतिशत साबुत चिरौंजी दाने एवं 2 प्रतिशत टूटे हुए दाने प्राप्त हुए।

साबुत दाने

प्रसंस्करण करने पर निम्न निष्कर्ष सामने आए

- कार्य जल्दी होने के साथ-साथ समय की बचत होती है।
- मजदूरों की आवश्यकता को कम करता है।
- एक व्यक्ति संपूर्ण प्रक्रिया को आसानी से कर सकता है।
- इस विधि से प्रसंस्करण की लागत में कमी एवं आय में वृद्धि होती है।
- चिरौंजी नट के छिलके, साबुत दाने एवं टूटे दाने अलग-अलग प्राप्त होते हैं। ■

आलू की फसल सुरक्षा

ऋषिपाल[1], श्वेता सोनी[2], राजेन्द्र सिंह[3] और एस.के. सचान[4]

भारत में आलू वर्ष भर उगाई जाने वाली एक महत्वपूर्ण फसल है। आलू को लगभग सभी परिवारों में किसी न किसी रूप में प्रयोग किया जाता है। इसका सभी व्यंजनों में उपयोग होने के कारण इसे सब्जियों का राजा कहा जाता है। आलू एक महत्वपूर्ण आहार तथा कम समय में पैदा होने वाली फसल है। इसमें स्टार्च, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, विटामिन-सी, खनिज लवण प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। कुपोषण की समस्या के समाधान का यह एक अच्छा स्रोत माना जाता है। इनमें अन्य पोषक तत्व भी उपलब्ध हैं। आलू की फसल में खरपतवार, कीट एवं रोग से 42 प्रतिशत की हानि होती है। आलू की फसल में विभिन्न कीट एवं व्याधियों से उत्पादन व गुणवत्ता पर प्रभाव पड़ता है। इस कारण इसे बाजार में उचित मूल्य नहीं मिल पाता है।

आलू को सब्जियों का राजा कहा जाता है। भारत में आलू के उत्पादन में पिछले साठ वर्षों में अविश्वसनीय बढ़ोतरी हुई है। वर्ष 1949 में जब केन्द्रीय आलू संस्थान की स्थापना हुई तब देश में आलू 0.23 मिलियन हैक्टर क्षेत्र में उगाया जाता था। इससे 1.54 मिलियन टन उत्पादन हुआ। वर्ष 2013-14 में आलू का क्षेत्रफल बढ़कर 2.02 मिलियन हैक्टर हो गया। इससे लगभग 44.31 मिलियन टन रिकॉर्ड उत्पादन हुआ। इस प्रकार आलू के क्षेत्रफल में आठ गुना वृद्धि हुई है। इस समय आलू उत्पादन में विश्वभर में चीन के बाद भारत का दूसरा स्थान है। यदि प्रति व्यक्ति उपयोग को देखा जाय तो यूरोप तथा कई अन्य देशों में आलू का उपयोग 100 से 120 कि.ग्रा. प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष है। आलू का उत्पादन कम होने के प्रमुख कारण स्थान विशिष्ट उत्पादन तकनीकियों की कमी, वैज्ञानिक ज्ञान का किसानों तक समय पर नहीं पहुंचना, भूमि का टुकड़ों में बंटा होना, अधिक उपज वाले बीजों का विस्थापन, प्राकृतिक आपदाएं तथा आलू में लगने वाले रोग एवं कीट हैं। पूर्वी मैदानी इलाकों में आलू की फसल को नुकसान पहुंचाने वाले मुख्य रोगों एवं कीटों की पहचान तथा प्रबंधन की जानकारी नीचे दी गई है। इनको अमल में लाकर इन क्षेत्रों के आलू उत्पादक रोगों एवं कीटों से होने वाली हानि से बचा जा सकता है।

[2]सहायक अध्यापक व विभागाध्यक्ष, उद्यान विभाग, दून स्नातकोत्तर, कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, देहरादून (उत्तराखण्ड); [1,3,4]सहायक प्राध्यापक प्रभारी, जैविक नियंत्रण प्रयोगशाला (कीट विज्ञान विभाग); प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (कीट विज्ञान विभाग) वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय-मेरठ (उत्तर प्रदेश)

आलू के फफूंदजनित रोग

अगेती झुलसा और पर्ण धब्बा रोग

आलू में अगेती झुलसा रोग ऑल्टरनेरिया सोलानी नामक फफूंद द्वारा फैलता है। इस रोग में आमतौर पर पत्तियां और कंद ग्रसित होते हैं। पत्तियां सूखी हुई तथा भूरे कागज

अगेती झुलसा और पर्ण धब्बा रोग

की तरह दिखाई देती हैं। ग्रसित पत्तियों पर प्राय: गोल-गोल छल्ले पड़ जाते हैं। कंदों पर गोलाकार से टेढ़े-मेढ़े और दबे हुए क्षति के निशान दिखाई देते हैं। ग्रसित कंदों का गूदा सूखकर भूरा और कॉर्क जैसा हो जाता है। पर्ण धब्बा रोग फोमा एक्सीगुआ, फोमा सारेघिना, ऑल्टरनेरिया और सरकोस्पोरा सोलानी ट्यूबरोसी जैसे फफूंदों द्वारा होता है। रोग की प्रचंडता या तीव्रता के अनुसार पैदावार में काफी नुकसान होता है। फोमा एक्सीगुआ फफूंद से फैलने वाले पर्ण धब्बा रोग में एकांतर प्रकोप और गूदे में सकेन्द्री जोन सहित 1-1.2 सें.मी. व्यास के धब्बे पड़ते हैं। फोमा सारेघिना फफूंद द्वारा पिन के सिरे के आकार के लगभग 4 मि.मी. व्यास के ये धब्बे अंडाकार, गोलाकार या टेढ़े-मेढ़े हो सकते हैं। अगेती झुलसा और पर्ण धब्बा रोग के खेत में उर्वरकों की असंतुलित मात्रा संक्रमित कंदों एवं अन्य सोलेनीसीयस परपोषियों में रहते हैं। रोग फैलने के लिए 17^0 से 25^0 सेल्सियस तापमान और 75 प्रतिशत सापेक्षिक आर्द्रता अनुकूल मानी जाती है। अगेती झुलसा रोग के लिए शुष्क एवं आर्द्र मौसम अनुकूल होता है।

रोकथाम

- उर्वरकों की संस्तुत मात्रा का इस्तेमाल करें, विशेषकर नाइट्रोजन की मात्रा का।
- बुआई के 40 दिनों के पश्चात पत्तियों पर 1.0 प्रतिशत यूरिया का छिड़काव करें। 10 दिनों के पश्चात छिड़काव पुन: करें।
- जैसे ही रोग के लक्षण दिखाई पड़ें वैसे ही प्रति हैक्टर 2.5 कि.ग्रा. की दर से 10 दिनों के अंतराल पर मैन्कोजैब का छिड़काव करें।

काली रूसी

काली रूसी रोग राइजोक्टोनिया सोलानी नामक फफूंद द्वारा है। यह रोग कंदों, अंकुरों, तनों एवं भूस्तारी को प्रभावित करता है। इस रोग से कंदों पर कहीं-कहीं गहरे स्लेटी रंग से काले रंग के पिंड स्कलेरोशिया के रूप में जम जाते हैं। इससे कंद भद्दे दिखाई देने के कारण उनका बाजार मूल्य कम हो जाता है। तने के अन्तिम छोर पर चोट के निशान पड़ जाते हैं और कंद विकृत हो जाते हैं। ग्रसित अंकुरों में कैंकर विकसित हो जाता है। परिणामस्वरूप पत्तियां किनारों से गुलाबी या बैंगनी रंगत सहित अंदर की तरफ मुड़ जाती हैं। अक्षीय पत्तियों में हरे या लाल रंग के वायवीय कंद बन जाते हैं। रोगकारक मृदा कंद या मृदा में पौधों के ढेरों में दृढ़ पटली स्कलेरोशिया के रूप में रहते हैं, जो प्रतिकूल अवस्था में भी काफी लंबी अवधि तक जीवित रहते हैं। रोग के विकास के लिए मृदा तापमान 18^0 से 20^0 सेल्सियस और अधिक नमी नये उत्पन्न कंदों के अनुकूल होती है।

प्रबंधन

- मक्का या हरी खाद जैसे ढैंचा, मूंग, सनई एवं लोबिया का फसलचक्र अपनाएं।
- प्रभावित खेतों में गर्मियों में ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करें।
- खुदाई के पश्चात बीज आलू को शीत भंडार में भंडारित करने से पूर्व 3

काली रूसी

पछेती झुलसा रोग

पछेती झुलसा रोग फाइटोफ्थोरा इन्फेस्टॉस नामक फफूंद से लगता है। भारत में यह रोग उपोष्णकटिबंधीय मैदानी क्षेत्रों में हर 4 से 5 साल के अंतराल पर महामारी के रूप में फैलता है। यह रोग पत्तियों एवं कंदों दोनों को नुकसान पहुंचाता है। प्रारंभ में पौधे की निचली पत्तियों पर हल्के या फीके हरे रंगे के लक्षण दिखाई देते हैं। पानी से भीगे धब्बे आसमानी रंग जैसे लगते हैं। बाद में पत्तियों की निचली सतह पर सफेद रंग की फफूंद विकसित हो जाती है। इस रोग का कारक कंदों पर छिछले और लाल भूरे रंग का शर्करा की महक लिए होता है। इसके तुरंत बाद ग्रसित ऊतकों के किनारों पर जंगनुमा भूरापन आ जाता है। संक्रमित बीज कंदों के प्राथमिक स्रोत के रूप में एक मौसम से दूसरे तक रोग का संचारण करते हैं। प्राथमिक संचारण के उपरांत यह रोग वायु या जल से बहकर चल बीजाणु द्वारा फैलता है। कंद बनने के दौरान कम मिट्टी से ढके कंद बढ़वार के समय मिट्टी फटने से, कंदों पर बरसात या सिंचाई के पानी से संक्रमित पत्तियों से रोग का संचारण हो जाता है। इस रोग के फैलने के समय लगातार दो-तीन दिनों तक तापमान 10^0 से 22^0 सेल्सियस के बीच सापेक्षिक आर्द्रता 80 प्रतिशत से अधिक और मौसम धुंधला या बादलों से गहराया हुआ तथा रुक-रुक कर बरसात होना अनुकूल माना जाता है।

प्रबंधन

- कम अवधि में शीघ्र कंद बनाने में सक्षम पछेती झुलसा प्रतिरोधी सहनशील किस्मों के स्वस्थ बीज इस्तेमाल करें।
- इंडो ब्लाइटकास्ट मॉडल की सहायता से रोग का अनुमान कर रोकथाम के उपाय करें।
- पछेती झुलसा रोग प्रकट होने के संकेत मिलने पर या वितान बंद होने के बिल्कुल पहले प्रति हैक्टर 2.5 कि.ग्रा. की दर से मैन्कोजैब का छिड़काव करें।
- दूसरा छिड़काव 8 प्रतिशत साई मोक्सानिल एवं 64 प्रतिशत मैन्कोजैब का मिश्रण बनाकर प्रति हैक्टर 3 कि.ग्रा. की दर से 10 दिनों के अंतराल पर करें।
- तीसरा छिड़काव 2.5 कि.ग्रा. मैन्कोजैब प्रति हैक्टर की दर से 10 दिनों के अंतराल पर करें।
- संक्रमित पत्तियों और कंदों को खुदाई से पहले नष्ट कर दें। खुदाई डंठल काटने के 12 से 15 दिनों बाद करें।

प्रतिशत बोरिक एसिड 30 ग्राम प्रति लीटर पानी से 20 से 30 मिनट तक उपचारित करें।

शुष्क गलन

शुष्क गलन भंडारित आलू में लगने वाला एक महत्वपूर्ण रोग है। इस रोग से मैदानी इलाकों में 5 से 23 प्रतिशत तक नुकसान हो जाता है। शुष्क गलन रोग फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम के कारण होता है। रोग से संक्रमित कंदों के छिलके सबसे पहले चोट के पास भूरे हो जाते हैं। बाद में ये गहरे भूरे रंग के हो जाते हैं। झुर्रियां विकसित होकर कंदों में गाढ़े छल्ले बन जाती हैं। इनमें से सूखे मृत ऊतक बाहर दिखाई देते हैं। भंडारों में संक्रमित आलू में पानी कम हो जाता है। ये शुष्क मुरझाए हुए सख्त हो जाते हैं। शुष्क आलू का विकास, भंडारण अवस्था, कंद आयु कंद आकार, क्षत और छिलके पर निर्भर करता है। संक्रमित कंद और मृदा के साथ चिपके कंदों की सतह आगामी फसल को संक्रमित करने में मुख्य भूमिका निभाती है। भंडारगृह में 18^0 से 28^0 सेल्सियस तापमान रोग के विकास के लिए अनुकूल होता है।

शुष्क गलन

प्रबंधन

- बीज कंदों को बेनोमाइल के 1200 पीपीएम, एक लीटर पानी में 1.2 ग्राम बेनोमाइल को घोलकर उपचारित करें। बुआई से पहले कंदों को 24 से 48 घंटों के लिए छाया में सुखाएं।
- खुदाई के 10 से 15 दिनों पहले सिंचाई बंद कर दें और तनों की कटाई करें। कंदों की खुदाई व भंडारण करने से पूर्व 3 प्रतिशत बोरिक एसिड (30 ग्राम प्रति लीटर पानी 20 से 30 मिनट) तक घोल में डुबोकर या घोल का छिड़काव करके उपचारित करें।

काला गलन

काला गलन रोग मैक्राफोमिना फासेओली फफूंद द्वारा होता है। प्रारंभिक संक्रमण के दौरान छिलकों पर संक्रमण के

जीवाणु मुरझान और भूरा गलन

आलू का जीवाणु मुरझान या भूरा गलन अधिक नुकसान पहुंचाने वाला रोग है। यह रोलस्टोनिया सोलेनेसीएरम नामक जीवाणु द्वारा होता है। रोग के प्रारंभिक लक्षणों में दोपहर में पौधों की ऊपरी पत्तियां थोड़ी झुकी हुई दिखाई देती हैं। बाद में पूरा का पूरा पौधा मुरझाकर मर जाता है। भंडारण के दौरान कंदों का गलन 30 से 70 प्रतिशत तक हो सकता है। कंदों पर संवहनी गलन या दबे हुए गड्ढेदार क्षय के निशान पड़ते हैं। संवहनी गलन से संक्रमित कंदों में वलयी ऊतक पानी से भीगे चक्र या छल्लों की तरह दिखाई देते हैं, जो धीरे-धीरे बाद में भूरे रंग के हो जाते हैं। ऐसे कंदों को काटकर 3 से 5 मिनट तक छोड़ दिया जाए तो छल्लों पर बैक्टीरिया के पुंज गंदले सफेद रंग के श्लेष्माओं के रूप में दिखाई देते हैं। मुरझान रोग के विकास के लिए 28^0 से 30^0 सेल्सियस तापमान अधिक अनुकूल होता है।

प्रबधन

- गैरपोषी फसलों जैसे रागी, मक्का, चरी, गेहूं, बंदगोभी, फूलगोभी, प्याज, लहसुन और बाजरा इत्यादि के साथ 2 से 3 वर्षीय फसलचक्र अपनाएं।
- बुआई के समय 12 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से ब्लीचिंग पाउडर उर्वरकों के साथ मिलाकर कूंड़ों में डालें।
- मिट्टी चढ़ाने का कार्य बुआई के समय न करें। ऐसा करने से जड़ों को चोट लग सकती है। खेत को सोलनेसी परिवार के खरपतवारों से मुक्त रखें।

मृदु गलन रोग

आलू कंदों में मृदु गलन रोग इरवीनिया केराटोबोरा की प्रजाति एट्रोसेप्टिका द्वारा फैलता है। रोग फैलाने में संक्रमित बीज मुख्य भूमिका निभाते हैं। संक्रमित बीज कंद या बीज के टुकड़े पूरे फसल मौसम के दौरान समय-समय पर क्षय फैलाते रहते हैं। ये मृदा में रोग के जीवाणु छोड़ते रहते हैं। गर्म और शुष्क अवस्था की बजाय इस रोग के जीवाणु शिशु कंदों के वातरंध्रों से ग्रसित करते हैं, जबकि खुदाई के समय ये कंदों की चोट या दरारों में स्थित रहते हैं। इसके जीवाणु संपूर्ण भंडारण अवधि के दौरान संक्रमित कंदों में जीवित रहते हैं। कंदों में मृदु रोग का प्रभाव अपरिपक्वता, चोट लगने, धूप में खुला पड़ा रहने अन्य रोगकारकों द्वारा आक्रमण, अधिक तापमान एवं आर्द्रता और ऑक्सीजन की कमी से होता है। कंदों की खुदाई 20^0 से 25^0 सेल्सियस से अधिक तापमान पर करना अधिक सुरक्षित होता है।

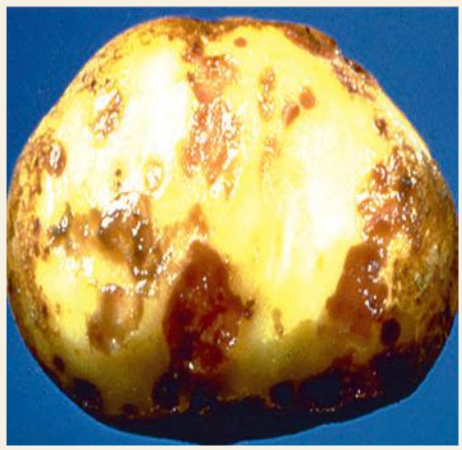

प्रबंधन

- खुदाई करने से पहले कंदों का छिलका मजबूत या परिपक्व होने के लिए तने काटिए। खुदाई करते समय कंदों को चोट से बचाएं।
- खुदाई के पश्चात बुआई के लिए रखे जाने वाले कंदों को शीत भंडारों में भंडारण से पूर्व 3 प्रतिशत बोरिक एसिड 30 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव करके या घोल में डुबोकर 20 से 30 मिनट तक उपचारित करें।
- खुदाई के पश्चात भंडारण से पहले उत्पाद में से संक्रमित कंदों को छांटकर अलग कर लें और उन्हें या तो जला दें या गहराई में दबा दें। खेत में छूट गए कंदों को एकत्रित करें और संक्रमित कंदों को नष्ट कर दें।

निशान या लक्षण दिखाई नहीं देते। निचले ऊतक पानी से भीगे हल्के स्लेटी रंग के हो जाते हैं। गुहिकाएं या मोरियां काली कवक जाल से भर जाती हैं। बाद में दृढ़ पटलियों का रूप या आकार धारण कर लेती हैं। कंदों के संक्रमण के लिए 28^0 से 32^0 सेल्सियस या इससे अधिक तापमान अनुकूल होता है। कम तापमान पर कंदों में सड़न हो जाती है।

प्रबंधन

- मध्यावधि में तैयार होने वाली किस्में उगाएं और फसल की खुदाई मृदा के तापमान को 28^0 सेल्सियस तक पहुंचने से पहले अर्थात फरवरी के अंत में करें।
- खुदाई के पश्चात बीज आलुओं का भंडारण करने से पहले बोरिक एसिड के 3 प्रतिशत घोल 30 ग्राम प्रति लीटर पानी में 20 से 30 मिनट तक डुबोकर या छिड़काव कर उपचारित करें। काले गलन से संक्रमित और खराब कंदों की छंटाई करें और स्वस्थ कंदों को शीत भंडार में भंडारित करें।

जीवाणु जनित रोग

साधारण खुरंड

काला गलन

यह रोग स्ट्रोप्टोमाइसिस स्पीशीज जीवाणु द्वारा फैलता है। इस रोग से पैदावार में कमी नहीं होती किंतु कंदों का आकार विकृत हो जाता है, इससे उनका बाजार मूल्य कम हो जाता है। इन रोग लक्षणों में कंदों के छिलकों पर छीलन या खुरचने के गेरूआ रंग के निशान दिखाई देते हैं। वातरंध्रों के आसपास तारों की तरह या टेढ़े-मेढ़े आकार के कॉर्क जैसे क्षत होते हैं। वातरंध्रों के आसपास सकेन्द्रित कॉर्क जैसे छल्ले बने होते हैं। सख्त या कठोर कार्की ऊतकों के आसपास 3 से 4 मि.मी. गहरे गड्ढे बन जाते हैं या खुरदरे कॉर्की स्पॉट बने होते हैं। रोग का संक्रमण अधिक होने से जड़ों एवं भूस्तारियों पर गहरे रंग के क्षत के निशान विकसित हो जाते हैं। रोगकारक कंदों की चोट या क्षत में या मृदा में प्रतिजीवित रहते हैं। खेत में रोगकारक छोटे कंदों को वातरंध्रों द्वारा संक्रमित करते हैं। सूखी मृदा में संक्रमण अधिक होता है, जबकि अधिक नमीयुक्त मृदा संक्रमण रोकती है। रोग संक्रमित कंद बीज के लिए इस्तेमाल करने के लिए उपयुक्त नहीं होते।

प्रबंधन

- गैर पोषी फसलों जैसे रागी, मक्का, चरी, गेहूं, बंदगोभी, फूलगोभी, प्याज, लहसुन और बाजरा इत्यादि के साथ 2 से 3 वर्षीय फसलचक्र अपनाएं।
- बुआई के लगभग 40 से 75 दिनों पश्चात कंद बनने की प्रारंभिक और बढ़वार अवस्था के दौरान बार-बार सिंचाई करके नमी बनाए रखें।
- खुदाई के पश्चात जिन कंदों को आगामी फसल उगाने के लिए बुआई के लिए इस्तेमाल करना है। उन्हें भंडारण से पहले 3 प्रतिशत बोरिक एसिड, 30 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल में 20 से 30 मिनट तक उपचारित करें।

आलू रस चूसने वाले कीट

माहूं

माहूं की माइजस परसिकी और एफिस गॅसिपी नामक दो प्रजातियां देश में मुख्य रूप

विषाणुजनित रोग

आलू के ज्यादातर वायरस राइबोन्यूक्लिक एसिड के बने होते हैं। ये आलू की पत्तियों, डंठलों और कंदों को संक्रमित करते हैं। ये पौधों के स्वरूप और पैदावार क्षमता को कम कर देते हैं। एक पौधे में एक ही समय में दो या दो से अधिक विषाणु संयुक्त रूप से भी संक्रमण कर मोजैक करते हैं। पीवीएक्स और पीवीए के संयुक्त संक्रमण से पत्तियों के लहरदार किनारों पर सिलवटों सहित धब्बे दिखाई देते हैं। पौधों की बढ़वार रुक जाती है व पत्तियों पर चितकबरे धब्बे पड़ जाते हैं। पीवीएक्स और पीवीवाई के संयुक्त प्रभाव से झुर्रीदार लक्षण दिखाई देते हैं। इसकी वजह से पौधों की बढ़वार अवरुद्ध हो जाती है। पत्तियां झुक जाती हैं या निचली पत्तियों की शिराओं में क्षय और ऊतक पत्तियों में तीव्र मोजैक हो जाता है। पोटेटो लीफ रोल वायरस में पौधों की शीर्ष पत्तियां थोड़ी मुड़ जाती हैं और पीली दिखाई पड़ती हैं। किनारों पर कई बार बैंगनी रंग का द्रव्य दिखाई देता है। द्वितीय संक्रमण में पौधे की निचली पत्तियां कसकर मुड़ जाती हैं और सख्त दिखाई देती हैं। पौधे पीले हो जाते हैं और बौने रह जाते हैं। इससे पैदावार में 50 से 90 प्रतिशत तक कमी हो जाती है। आलू का शीर्ष पत्ती मुड़न वायरस एक नवीन वायरस है, जो सफेद मक्खी द्वारा संचारित होता है। इसके संचारण या प्रभाव से पौधों की शीर्ष पत्तियां मुड़ जाती हैं। यह आलू की अगेती फसल गर्म शुष्क अवस्था में अधिक स्पष्ट होता है। पोटेटो वायरस एक्स का संचरण मुख्यतः यंत्रों या मशीनों द्वारा कृषि क्रियाएं करते समय होता है। पोटेटो वायरस वाई पोटेटो वायरस ए. पोटेटो वायरस एक एवं पोटेटों वायरस एम का संचारण मुख्यतः माहूं द्वारा होता है।

प्रबंधन

- आलू की बुआई से पहले सफेद मक्खी एवं माहूं से रोकथाम करें।
- बुआई से पहले बीज कंदों को इमिडाक्लोप्रिड 4 मि.ली. प्रति 10 लीटर के घोल में उपचारित करें।
- मिट्टी चढ़ाते समय पौधों की सतह के पास 15 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से फोरेट 10 जी डालें।
- पौधों के निकलने के समय एवं 30 दिनों की खड़ी फसल में 3 मि.ली. इमिडाक्लोप्रिड प्रति 10 लीटर की दर से छिड़काव करें।
- 50 दिनों की खड़ी फसल में दूसरे एकांतर कीटनाशक जैसे थाईमेथक्साम का 25 डब्ल्यूजी 0.05 प्रतिशत की दर से छिड़काव करें।
- कम से कम 30 से 50 एवं 70 दिनों की फसल में रोगी एवं बेमेल पौधों के कंद जड़ सहित उखाड़ें और नष्ट कर दें।
- माहूं संख्या प्रति 100 संयुक्त पत्तियों पर 20 तक पहंचने से पूर्व बीज फसल के तने काट दें।

कटुकी माइट्स

वयस्क और शिशु कीट दोनों ही नई पत्तियों का रस चूसकर फसल को नुकसान पहुंचाते हैं। कटुकी ग्रसन के प्राथमिक लक्षण पौधों की शीर्ष पत्तियों पर दिखाई देते हैं। इससे पत्तियां नीचे की तरफ मुड़ जाती हैं। संक्रमण के प्रारंभ में पौधों की सबसे पहले निचली पत्तियां तैलीय हो जाती हैं। बाद में पूरा पौधा तैलीय हो जाता है। संक्रमित पत्तियां छोटी रह जाती है। ये चमड़े की तरह दिखाई देती हैं। पत्तियां निचली तरफ से तांबे जैसी रंगत की दिखाई देती हैं। कटुकी का अधिक आक्रमण होने से संक्रमित पत्तियां सूखकर गिर जाती हैं और पूरा पौधा मुरझाकर सूख जाता है।

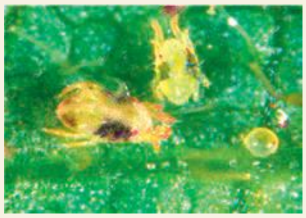

प्रबंधन

- आलू की बुआई अगेती फसल के लिए सितंबर तथा मुख्य फसल के लिए अक्टूबर में करने से कटुकी की संख्या में कमी होती है।
- फसल में संक्रमित पौधों को कंद व जड़ सहित उखाड़कर नष्ट कर दें।
- डाइकोफोल 18.5 ई.सी. 0.2 प्रतिशत या सल्फर 3 ग्राम लीटर की दर से पत्तियों पर छिड़काव करें या 2.5 मि.ली. लीटर की दर से कैल्थान का छिड़काव करें। 8 से 10 दिनों के अंतरालों पर छिड़काव दोहराते रहें।

माहू

से पाई जाती हैं। माइजस परसिकी बहुभक्षी कीट हैं। यह पौधों की कई किस्मों पर रहते हैं। ये साल भर देश के किसी न किसी भाग में विराजमान होते हैं। पंखों के बिना ये कीट हरे-हरे, पीले या कभी-कभी गुलाबी रंग के होते हैं। ये आलू की पत्तियों, तनों एवं जड़ों के फ्लोयम से रस चूसकर फसल को कमजोर कर नुकसान पहुंचाते हैं। रस चूसने के अलावा ये विषाणुओं को फैलाने में मुख्य वाहक माने जाते हैं। माहू की बढ़वार और विषाणु रोग फैलाने के लिए 18^{0} से 25^{0} सेल्सियस तापमान बहुत ही अनुकूल होता है।

पाद फुदका

पाद फुदका को जैसिड्स भी कहा जाता है। वयस्क एवं शिशु दोनों ही पौधों का रस चूसकर सीधे नुकसान पहुंचाते हैं। इससे पत्तियां पीली, भूरी एवं घुंघराली हो जाती हैं। शिशु एवं वयस्क कीट रस चूस कर हॉपर बर्न लक्षण उत्पन्न कर देते हैं। आलू में पर्पल टॉप रोल और मार्जिनल फ्लेवसेन्स जैसे रोगों को फैलाने में पाद फुदका की एलेब्रोइड्स नाइग्रोस्कुटेलेटस और सेरीआना इक्वेटा नामक प्रजातियां रोग वाहक पाई गईं।

काष्ठ कीट

काष्ठ की धब्बेदार या धारीदार पंखों से युक्त ये कीट बहुत ही पतले और छोटे आकार के होते हैं। ये हवा द्वारा बहुत लंबी दूरी तक पहुंच सकते हैं। शिशु तथा वयस्क समूहों में, पुरानी एवं नई पत्तियों का रस चूसते हैं। देश में थ्रिप्स पाल्मी सबसे अधिक प्रबल प्रजाति है। ये पत्तियों से भोजन प्राप्त करने के अलावा टॉस्पोवायरस के संचारण को फैलाते हैं। सितंबर-अक्टूबर के दौरान उच्च तापमान और शुष्क जलवायु इनके लिए बहुत ही अनुकूल होती है।

सफेद मक्खी

सफेद मक्खी बहुत ही छोटे नर्म शरीर एवं पंखों वाली होती है। सफेद मक्खी पौधे का रस चूसती है। यह तीव्रता से प्रजनन करके है। अन्य जीवों की तरह अपनी बढ़वार में वृद्धि करती है। अपने जीवनकाल में मादा मक्खी 150 से 300 अंडे देती है। सफेद मक्खी पौधों का रस चूसकर बुरी तरह नुकसान पहुंचाती है। इससे पौधे मुरझा जाते हैं व उनकी बढ़वार रुक जाती है।

रस चूसने वाले कीटों का प्रबंधन

- पीले चिपचिपे 12 ट्रैप प्रति हैक्टर का प्रयोग करें।
- सफेद मक्खी से ग्रसित पत्तियां, फूल और पौधे तोड़कर नष्ट कर देने चाहिए।
- क्राइसोपर्ला कार्निया को 50,000-1,00,000 अंडे प्रति हैक्टर छोड़ें।
- बुआई से पहले बीज कंदों को इमिडाक्लोप्रिड 4 मि.ली. प्रति 10 लीटर के घोल में उपचारित करें।

काष्ठ कीट

- मिट्टी चढ़ाते समय पौधों की सतह के पास 15 कि.ग्रा प्रति हैक्टर की दर से फोरेट 10 जी डालें।
- पौधों के निकलने के समय एवं 30 दिनों की खड़ी फसल में इमिडाक्लोप्रिड 3 मि.ली. प्रति 10 लीटर की दर से छिड़काव करें।
- 50 दिनों की खड़ी फसल में दूसरे

सफेद मक्खी

एकांतर कीटनाशक जैसे थाइमेंथॉक्साम 25 डब्ल्यूजी 0.5 प्रतिशत की दर से छिड़काव करें।
- 70 दिनों की खड़ी फसल में डाइमेथोएट 30 ई.सी. 1 या मेटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. लीटर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

मिट्टी में पनपने वाले कीट

कर्तक कीट

आलू की फसल के लिए मैदानी इलाकों में एग्रोटिस इप्सीलोन अधिक खतरनाक है। मैदानी इलाकों में ये अक्टूबर से अप्रैल तक सक्रिय रहते हैं। केवल इल्लियां

कर्तन कीट

फसल को नुकसान पहुंचाती हैं। रात के समय ये नए अंकुरों और मृदा में उग रहे कंदों को काटकर उनमें छेद करके पैदावार और गुणवत्ता को नुकसान पहुंचाते हैं। दिन के समय तनों के पास मृदा में छिपे रहते हैं। इनकी बढ़वार के लिए सूखा मौसम बहुत अनुकूल होता है। पूरी तरह से विकसित इल्लियां मृदा में पार्थिव कोया कृषि कोष या कोकोन बन जाती हैं।

प्रबंधन

- ग्रीष्मकालीन जुताई में फसल मौसम न होने पर गहरी जुताई करें।
- मिट्टी चढ़ाते समय पौधों की सतह के पास 15 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से फोरेट 10 जी डालें।
- स्प्रेयर द्वारा पौधों की पत्तियां और खेत की मेड़ों पर क्लोरोपाइरीफॉस 20 ई.सी. की 205 मि.ली. की दर से छिड़काव करें। छिड़काव सायंकाल के समय करें। आमतौर पर कर्तक कीट दिन के समय तनों के पास मृदा में छिपे रहते हैं।

लाल चींटी

लाल चींटी डोरिलस ओरियंटासिस आलू उत्पादक क्षेत्रों के लिए ही गंभीर समस्या है। यह आलू के पौधों के आंतरिक भागों को खा जाती है और कंदों में छेद कर देती है। संक्रमित कंद फफूंद और बैक्टीरिया के संक्रमण के लिए प्रवृत हो जाते हैं। इससे कंदों में सड़न लग जाता है। इनका प्रभाव अधिक होने पर 52 से 62 प्रतिशत तक कंदों में संक्रमण हो सकता है। लाल चींटी सभी जगहों पर पाई जाती हैं।

प्रबंधन

- मिट्टी चढ़ाने से पहले पौधे के पास 150 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से सरसों की खली डालें।
- कूंड़ों में सिंचाई करें, जिसके तेज बहाव से लाल चींटियां टिक नहीं सकतीं।
- क्लोरोपाइरीफॉस 20 ई.सी. की 2.5 मि.ली. की दर से पौधे की पत्तियों और खेत की मेड़ों पर छिड़काव करें।

लाल चींटी

पत्तियों खाने वाली इल्लियां

हेलिकोवर्पा आर्मीजेरा, सोडोप्टेरा, एक्सीगुआ, बिहार हेयरी केटरपिलर आदि पत्ती खाने वाले कई बहुभक्षी कीट हैं। इन कीटों को जब पसंदीदा परपोषी उपलब्ध नहीं होते तो ये आलू की पत्तियों को खाकर अपना पेट भरते हैं। सूंडी की अवस्था में ये कीट बहुत अधिक नुकसान पहुंचाते हैं। ये पत्तियों को खाकर पौधे को पत्ती रहित कर देते हैं। इनका आक्रमण अधिक होने पर पैदावार का अधिक नुकसान होता है।

प्रबंधन

- ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करें और पौधों की संक्रमित पत्तियों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- सूंडी की प्रथमावस्था दिखाई देते ही 250 एलई का एचएएनपीवी को एक कि.ग्रा. गुड़ तथा 0.1 प्रतिशत टीपोल के घोल का प्रति हैक्टर की दर से 10-12 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें।
- इसके अतिरिक्त 1 कि.ग्रा. बीटी का प्रति हैक्टर प्रयोग करें।
- तदोपरांत 5 प्रतिशत एनएसकेई का छिड़काव करें।
- प्रकोप बढ़ने पर क्विनालफॉस 25 ईसी या क्लोरोपायरीफॉस 20 ईसी का 2 मि.मी. प्रति लीटर या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल की 1 मि.मी. प्रति लीटर की दर से छिड़काव करें।
- स्पाइनोसैड 45 एससी व थायोमेंक्जाम 70 डब्ल्यूएससी की 1 मि.मी. प्रति लीटर का प्रयोग करें।

पत्तियों को खाने वाले कीट

एपीलेकना बीटल

इसे लेडीबर्ड तोता मामा के नाम से भी जाना जाता है। भृंग और सूंडियां दोनों ही नवंबर से दिसंबर के दौरान पत्तियों को खाती हैं। लार्वा या सूंडी का जीवनचक्र 21 से 28 दिनों तक होता है। पूर्ण विकसित सूंडी खाना बंद कर देती है। 2 से 3 दिनों तक प्यूपा कोष बनने की पूर्व अवस्था में व्यतीत करती है। एपीलेकना बीटल कीट का प्रबंधन इल्लियों की तरह ही करें।

भंडारगृहों में नुकसान करने वाले कीट

आलू का कंद शलभ कीट

कंद शलभ कीट विश्व भर के गर्म इलाकों में भंडारित कंदों को नुकसान पहुंचाने वाला एक मुख्य कीट है। इस कीट की तीन प्रजातियों में से थोरिमिया ऑपरकुलेला नामक प्रजाति प्रमुख है। पश्चिमी बिहार में आलू फसल को नुकसान पहुंचाने वाला यह मुख्य कीट है। इसके लार्वा पत्तियों और कंदों को खाकर नुकसान पहुंचाते हैं। लार्वा पत्तियों में छेद करके शिराओं और डंठलों के बीच सुरंग बना देते हैं। इसके अलावा ये तनों या डंठलों को कमजोर कर तोड़ देते हैं। ये कंदों के अंखुओं के पास अंडे देकर उन्हें दूषित कर देते हैं। अंखुओं या अंकुरों पर इनके एकत्रित मल से इनकी सक्रियता अन्य कीटों से अलग होती है। इससे आलू की गुणवत्ता कम हो जाती है।

एपीलेकना बीटल

प्रबंधन

- बुआई के 30 से 35 दिनों तथा 50 से 55 दिनों पश्चात दो बार मिट्टी चढ़ाएं।
- 20 फेरोमोन ट्रैप प्रति हैक्टर कंद शलभ कीट को आकर्षित करके पकड़ने के लिए लगाएं।
- आलू की फसल के आसपास के क्षेत्रों में सोलेनेसी फसल न लगाएं।
- खुदाई के पश्चात खेत में छूटे कंदों को इकट्ठा करें और पत्तियों इत्यादि के अवशेषों को जला दें।
- देसी भंडारगृहों में लैंटाना या सफेदे की सूखी पत्तियों की मोटी तह से ढककर ढेर लगाकर भंडारण करें। ■

हाइड्रोपोनिक्स तकनीक से सब्जी उत्पादन

निशा शर्मा, कौशल कुमार, सोमेन आचार्य, नरेंद्र सिंह और **ओ.पी. चौरसिया**
रक्षा उच्च तुंगता अनुसंधान संस्थान (डिहार)-डीआरडीओ द्वारा 56 एपीओ, लेह-लद्दाख

यह तकनीक सदियों पहले से उपयोग की जा रही है। मिस्र, चीन, बेबीलोन एवं भारत में लोग प्राचीन समय में गोबर का पानी में घोल बनाकर खीरा, तरबूज और अन्य बहुत सी सब्जियां उगाने के लिए उपयोग में लाते थे। बाद में 1925 में वैज्ञानिकों ने शोध के लिए पौधों को पोषक तत्वों के घोल में उगाना शुरू किया और इसको 'न्यूट्रीकल्चर' का नाम दिया। सन् 1929 में डा. विलियम एफ. जैरीक्क ने कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में टमाटर की फसल को सफलतापूर्वक इस तकनीक से तैयार किया एवं इस तकनीक को हाइड्रोपोनिक्स का नाम दिया। 1960 और 70 के दशक में व्यावसायिक तौर पर इस तकनीक का उपयोग अबू धाबी, बेल्जियम, कैलिफोर्निया, डेनमार्क, जर्मनी, हॉलैंड, ईरान, इटली, जापान एवं रूस जैसे देशों में होने लगा।

लद्दाख भारत के दुर्गम क्षेत्रों में से एक है। यह स्थल एक ठंडा रेगिस्तान है। यहां की जलवायु बहुत ही कठोर है। यह देश का एक ऐसा दुर्गम क्षेत्र है, जहां पर ताजा फल-सब्जियां सेना के जवानों एवं वहां रह रहे लोगों को उपलब्ध करवाना एक चुनौती है। यह क्षेत्र अक्टूबर से अप्रैल तक बर्फ से ढका रहता है। इस अवधि में वहां पर फल-सब्जियों की उपलब्धता बहुत कम होती है। इस क्षेत्र में एक वर्ष में केवल एक ही फसल (मई से सितंबर/अक्टूबर तक) उगाई जा सकती है। बढ़ती आबादी एवं शहरीकरण के कारण कृषि योग्य भूमि घटती जा रही है। बिना मृदा के पौधे उगाने वाली यह तकनीक काफी लोकप्रिय हो रही है। हाइड्रोपोनिक्स यानी जलीय कृषि। यह खेती की वह आधुनिक तकनीक है, जिसमें वनस्पति की वृद्धि और उपज का नियंत्रण जल व उसके पोषक स्तर के जरिये होता है। दूसरे शब्दों में यह मृदा के बिना की जाने वाली खेती है। इसमें पानी में पोषक तत्व घोल बनाकर फसल उगाई जाती है। केवल पानी में या बालू अथवा कंकड़ों के बीच नियंत्रित जलवायु में बिना मृदा के पौधे उगाने की इस तकनीक को हाइड्रोपोनिक्स कहते हैं। हाइड्रोपोनिक्स शब्द की उत्पत्ति दो ग्रीक शब्दों 'हाइड्रो' तथा 'पोनस' से मिलकर हुई है। हाइड्रो का मतलब है पानी, जबकि पोनस का अर्थ है कार्य।

हाइड्रोपोनिक्स खेती की प्रक्रिया

हाइड्रोपोनिक्स यानी जलीय कृषि में जल को अच्छी तरह से उन संतुलित पोषक तत्वों में समृद्ध किया जाता है, जो पौधों की वृद्धि एवं बेहतर उपज के लिए जिम्मेदार होते हैं। जल के पी-एच मान (5.5-6.5) को निर्दिष्ट स्तर के अंदर रखा जाता है। इसके फलस्वरूप पौधों की अच्छी वृद्धि एवं बेहतर उपज प्राप्त होती है। कृषि की इस पद्धति में पौधे जल एवं सूरज की रोशनी से पोषण प्राप्त कर उपज देते हैं। हमारे देश में भी कई क्षेत्रों में बिना मृदा एवं जमीन के पौध उगाए जा रहे हैं। पंजाब में आलू एवं राजस्थान में चारे वाली फसलें उगाई जा रही हैं। इस तकनीक से पालक, लेट्यूस, सेलेरी, टमाटर, खीरा, शिमला मिर्च एवं स्ट्रॉबेरी जैसी फसलें आसानी से उगाई जा सकती हैं।

हाइड्रोपोनिक्स की चुनौतियां

- परंपरागत विधि की अपेक्षा इस तकनीक

हाइड्रोपोनिक्स के लाभ

- हाइड्रोपोनिक्स जल में मौजूद सभी पोषक तत्वों को बिना बर्बाद किए इस्तेमाल करता है। इसलिए यह कम प्रदूषक प्रणाली है।
- मृदा आधारित कृषि यानी पारंपरिक कृषि की तुलना में हाइड्रोपोनिक्स में जल की कम आवश्यकता होती है।
- हाइड्रोपोनिक्स में जल के पी-एच स्तर को नियंत्रित किया जाता है। पोषक तत्व अनुकूलित मात्रा में प्रदान किए जाते हैं। इसलिए कृषि की इस प्रणाली में पौधों की तीव्र वृद्धि और अधिक उपज की उम्मीद की जा सकती है।

- हाइड्रोपोनिक्स में कृषि व्यवस्था को स्वचालित तरीके से आसानी से प्रबंधन किया जा सकता है।
- उत्पाद की गुणवत्ता हाइड्रोपोनिक्स में उच्च स्तर की होती है।
- ग्रीनहाउस तकनीक से इसका संयोजन कर और भी बेहतर परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। इसमें हम थोड़े से क्षेत्र में अधिक उत्पादन ले सकते हैं। इसमें बेमौसमी सब्जियां भी उगा सकते हैं।
- इस तकनीक से उगाई जाने वाली फसलें और पौधे जल्दी तैयार हो जाते हैं। बाजार में भी उनका बेहतर दाम मिलता है।
- हाइड्रोपोनिक्स द्वारा तैयार किए गए पौधों और फसलों का मृदा और जमीन से कोई संबंध नहीं होता इसलिए इनमें कम रोग होते हैं। इनके उत्पादन में कीटनाशकों का उपयोग नहीं करना पड़ता।
- इस तकनीक से हम पूरे साल उत्पादन कर आय को बढ़ा सकते हैं।

को उपयोग में लाने के लिए अधिक लागत आती है।

- इस विधि में पंप की सहायता से पोषक तत्व घोल को पौधों तक पहुंचाया जाता है और पुनः इस्तेमाल किया जाता है। इसके लिए लगातार विद्युत आपूर्ति की आवश्यकता होती है।
- इस तकनीक में शुरू में टैंक, पंप, पाइप एवं बिजली जैसे उपकरणों की आवश्यकता होती है।
- इस प्रणाली को सफलतापूर्वक चलाने के लिए उचित प्रशिक्षण एवं कुशल श्रमशक्ति की आवश्यकता है।

हाइड्रोपोनिक्स के प्रकार

ए) मूल रूप से हाइड्रोपोनिक्स के पांच प्रकार हैं :

- विक प्रणाली
- फ्लड एवं ड्रेन
- एनएफटी
- ड्रिप हाइड्रोपोनिक्स
- डीप वॉटर कल्चर

बी) संरचना के आधार पर हाइड्रोपोनिक्स के दो प्रकार हैं :

- परिसंचारी प्रणाली
- गैर-परिचालित प्रणाली

विक प्रणाली

इस प्रणाली में पौधों को शोषक आधार (जैसे कोको कोयर, वर्मिकुलाइट परलाईट) में नायलॉन विक (बाती) के साथ रखा जाता है। यह विक पौधों की जड़ों से होकर पोषक तत्वों के टैंक (भंडार) में चली जाती हैं। विक (बाती) पोषक तत्वों को भंडार से पौधों तक पहुंचाती है। यह तकनीक छोटे घरेलू पौधे एवं जड़ी-बूटी उगाने के लिए उत्तम है। यह उन पौधों के लिए उपयोगी नहीं है, जिन्हें अधिक मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है।

फ्लड एवं ड्रेन प्रणाली

इस प्रणाली में पौधों के बेड को तब तक पोषक तत्वों के घोल से सींचा जाता है, जब तक यह एक निश्चित बिन्दु तक नहीं पहुंच जाता। इस तकनीक में ड्रेन की सहायता से पोषक तत्वों के घोल को पौधों से कुछ इंच नीचे रखा जाता है ताकि यह अतिप्रवाहित न हो। पंप की सहायता से पोषक तत्वों को पौधों तक पहुंचाया जाता है और यह बिजली से चलता है। पंप एक निश्चित समय तक चलता है और उसके बाद बंद हो जाता है। इससे पानी वापिस जड़ों से होकर पौधों के बेड को पूरी तरह से भिगो देता है। यह प्रणाली बहुत से पौधों को उगाने का लिए उपयोगी है।

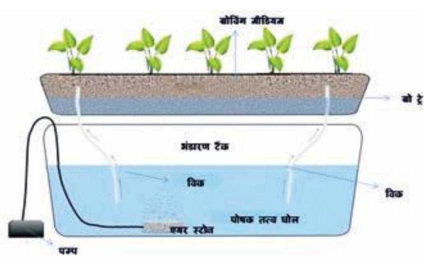

विक प्रणाली

एनएफटी (न्यूट्रीएंट फिल्म तकनीक)

यह तकनीक हरी पत्तेदार सब्जियां उगाने के लिए अत्यधिक उपयोगी है। आमतौर पर यह तकनीक लेट्यूस (सलाद) उगाने के लिए

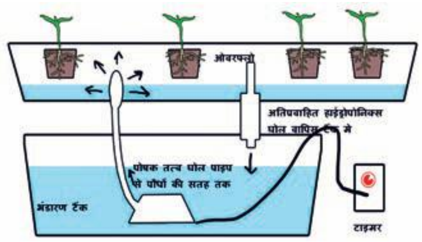

फ्लड प्रणाली

अधिकाधिक उपयोग की जाती है। एनएफटी में पौधों को एक चैनल या ट्यूब में रखा जाता है। पौधों की जड़ें हाइड्रोपोनिक्स घोल में झूलती रहती हैं। इस प्रणाली में थोड़ा सा झुकाव होता है ताकि पोषक तत्व पौधों की जड़ों तक आसानी से पहुंचे और वापिस टैंक में आ जाएं। इस तकनीक से लगभग 70-80 प्रतिशत पानी की बचत होती है। यह तकनीक व्यावसायिक तौर पर अत्यधिक उपयोग की जाती है।

ड्रिप हाइड्रोपोनिक्स

इस प्रणाली में ड्रिप की सहायता से पोषक तत्व घोल पौधों की जड़ों तक पहुंचाया जाता है। यह घोल घूम कर वापिस टैंक (भंडार) में चला जाता है। इस प्रणाली में भी पौधों को एक शोषक आधार पर रखा जाता है। ड्रिप धीरे-धीरे पौधों की जड़ों को गीला करता है एवं शोषक आधार इसमें अधिक समय तक नमी बनाए रखता है। यह तकनीक व्यावसायिक एवं घरेलू दोनों उत्पादकों के लिए उपयोगी है। यह आसानी से उपयोग में लाई जा सकती है। इसको सेट करना भी बहुत सरल है।

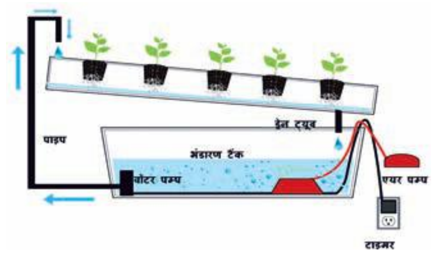

एनएफटी (न्यूट्रीएंट फिल्म तकनीक)

डीप वॉटर कल्चर

इस तकनीक में पौधों की जड़ों को पोषक तत्वों के घोल में रखा जाता है। एयर स्टोन की सहायता से पानी में वायु संचारण की जाती है। यह तकनीक बड़े पौधों जैसे टमाटर, बैंगन, शिमला मिर्च, खीरा इत्यादि के लिए बेहतर है।

संरचना के आधार पर

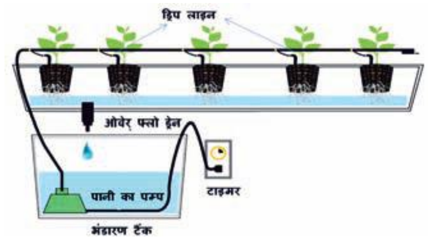

ड्रिप हाइड्रोपोनिक्स

परिसंचारी प्रणाली

इस प्रणाली में पोषक तत्वों को एक पंप की सहायता से पौधों की जड़ों तक पहुंचाया जाता है। यह वापिस भंडार टैंक में आ जाता है। यहां से पोषक तत्वों को पुनः उपयोग में लाया जा सकता है।

गैर-परिचलित प्रणाली

यह प्रणाली हाइड्रोपोनिक्स की सबसे सरल विधि है। इसमें बिजली और पम्प की

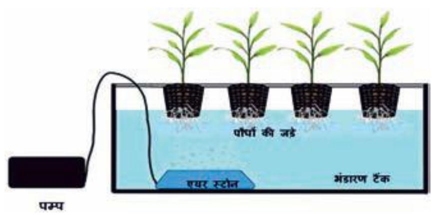

डीप वाटर कल्चर

आवश्यकता नहीं होती है। इस प्रणाली में पोषक तत्वों के घोल को केवल एक ही बार इस्तेमाल किया जाता है। इसमें पोषक तत्वों की एकाग्रता कम हो जाती है। इसके पी-एच और ईसी में परिवर्तन हो जाता है तो इस घोल को बदल कर नया तैयार किया जाता है।

भविष्य की संरचनाएं

यह तकनीक बहुत लाभदायक है, क्योंकि इसमें मृदा की अपेक्षा कम रोग होते हैं। इसमें शीघ्रातिशीघ्र बेहतर एवं अधिक उत्पादन क्रिया जा सकता है। यह तकनीक उन क्षेत्रों के लिए वरदान है, जहां पानी की कमी है एवं मृदा की उर्वरा क्षमता कम है। भारत में ठंडे रेगिस्तान जैसे लेह-लद्दाख, लाहौल-स्पीति और गर्म रेगिस्तान जैसे राजस्थान एवं गुजरात के कुछ क्षेत्रों के लिए यह अत्यधिक लाभदायक हो सकती है। किसानों को इस तकनीक का उचित प्रशिक्षण देकर इस तकनीक को अधिकाधिक उपयोग में लाकर उनकी आर्थिक आय में वृद्धि की जा सकती है। ■

संकटग्रस्त वनस्पति
सर्पगंधा का महत्व एवं खेती

बृजेश कुमार मिश्र, वंदना त्रिपाठी और **जी.आर. स्मिता**
भाकृअनुप-औषधीय एवं सुगंधीय पादप अनुसंधान निदेशालय, बोरीआवी-387310, आणंद (गुजरात)

भारतीय चिकित्सा विज्ञान के प्राचीन ग्रंथों 'चरक संहिता एवं सुश्रुत संहिता' में सर्पगंधा के विविध औषधीय गुणों का उल्लेख हुआ है। सर्पदंश तथा कीटदंश के उपचार के लिए इसे अत्यधिक प्रभावी बताया गया है। सर्पगंधा एपोसाइनेसी कुल का बहुवर्षीय महत्वपूर्ण औषधीय पौधा है। इसका वानस्पतिक नाम *राउवोलफिया सर्पेन्टिना* है। यह भारतीय मूल का एक औषधीय पौधा है, जो भारत में व्यापक रूप से फैला हुआ है। यह हिमालय के पहाड़ों तथा पश्चिमी घाट, अंडमान द्वीप समूह के दक्षिण, पूर्व एशिया सहित नमी वाले जंगलों में पाया जाता है और यह भारत, चीन में परंपरागत चिकित्सा तथा आयुर्वेद, यूनानी एवं पूरे विश्व में आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों में उपयोग किया जाता है। सर्पगंधा को आयुर्वेद में निद्राजनक भी कहा जाता है। इसे संस्कृत में सर्पगंधा, हिन्दी में चन्द्रभागा या छोटा चांदय, उड़िया में पातालगरूडय, मराठी में मूगातवेल सपसंदाय, गुजराती में अमेल्पोदी, बंगाली में चांदर्ण, चंद्रय, कन्नड़ में सूत्रानावींश्य, तमिल में चिवन अमलपोडी आदि नामों से भी जाना जाता है। पूरे विश्व में इसकी सूखी जड़ों की मांग 20,000 टन के आसपास है, जिसमें भारतीय सर्पगंधा जड़ों की अधिक मांग है। इसका उपयोग परंपरागत ही नहीं बल्कि चिकित्सा औषधि के रूप में भी किया जाता है।

सर्पगंधा उच्च रक्तचाप के लिए संपूर्ण विश्व में सर्वोत्तम औषधि के रूप में मानी जाती है। इसकी जड़ों में रिसर्पिन नामक एल्केलाइड पाया जाता है, जो उच्च रक्तचाप की अचूक दवा है। इसका प्रमुख तत्व रिसर्पिन है और इसके अलावा जड़ों में कई तत्व भी पाए जाते हैं, जिनमें क्षारभ, सर्पेन्टिना, एजमेलीन, एजमेलीसीन, रेसिनामीन, रेसर्पीन, रवोल्फीनाइन, योहीमबीन आदि प्रमुख हैं। इनका उपयोग उच्च रक्तचाप, मस्तिष्क संबंधी रोगों, मिर्गी कंपन, आंत की बीमारी, अनिद्रा, उन्माद एवं

प्रवर्धन

इसका प्रवर्धन बीज, तना तथा जड़ कटिंग द्वारा किया जाता है। व्यावसायिक खेती के लिए बीज द्वारा प्रवर्धन किया जाता है। बीजों की रोपाई के लिए 5.5 कि.ग्रा./हैक्टर बीज दर का उपयोग किया जाता है। बुआई से पहले बीज को 24 घंटे पानी में भिगोकर रखना चाहिए। इससे अनुपजाऊ बीज ऊपर आ जाते हैं तथा भारी बीज नीचे बैठ जाते हैं। भारी बीज का बुआई के लिए उपयोग किया जाता है। इसमें 20-40 दिनों के अंदर अधिकतर अंकुर आ जाते हैं। इस तरह दोबारा पौध रोपण से बचा जा सकता है।

सर्पगंधा का पौधा

हिस्टीरिया में किया जाता है तथा इसका अर्क अन्य पौधों के अर्क के साथ मिलाकर हैजा, पेट का दर्द तथा बुखार में उपयोग किया जाता है। भारत एवं नेपाल में सामान्य उपचार के तहत एक ज्वरनाशक के रूप में तथा सांप और सरिसृप के काटने पर सदियों से इसका उपयोग किया जा रहा है। भारतीय चिकित्सा प्रणाली-आयुर्वेद में भी इसका उपयोग अन्य औषधियों जैसे सर्पगंधादि चूर्ण, सर्पगंधा धनवंती, सर्पगंधा टेबलेट, सर्पगंधा वटी, सर्पगंधा योगा आदि में किया जाता है।

यह विश्व में सबसे प्रसिद्ध औषधि के रूप में जानी जाती है। हमारे देश में चार सौ सालों से दवा के रूप में इसका उपयोग किया जा रहा है। 'सर्पगंधा की जड़ का गर्भाशय संकुचन को प्रोत्साहित करने के लिए उपयोग किया जाता है और बच्चे के जन्म में उपयोग के लिए इसकी सिफारिश की गई है तथा पत्तियों का रस कॉर्निया की क्षमता बढ़ाने के लिए उपयोग किया गया है'। (वेल्थ ऑफ इंडिया)।

उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र

यह अफ्रीका, इंडोनेशिया, श्रीलंका, थाइलैंड, बर्मा, पाकिस्तान आदि देशों में नैसर्गिक रूप में पाया जाता है। इसकी खेती भारत, श्रीलंका तथा जावा में की जाती है। भारत में हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश तथा जम्मू एवं कश्मीर में इसकी खेती की जा रही है। यह प्राकृतिक रूप से भी पाया जाता है और अधिकांशत: इसकी जड़ें जंगलों से एकत्रित की जाती हैं।

प्रमुख प्रजातियां

हालांकि रौवोल्फियां जीनस में राउवोलफिया सर्पेन्टिना और राउवोलफिया टेट्राफिला नामक दो प्रजातियां उपलब्ध हैं। इसमें राउवोलफिया सर्पेन्टाइन की महत्वपूर्ण औषधीय गुणों के कारण अत्यधिक मांग है।

किस्में

इसमें आरएस-1 किस्म उपलब्ध है, जिसमें फसल के 18 महीने बाद एल्कोलायड की मात्रा 1.64-2.94 प्रतिशत पाई गई।

खेती की पद्धति

मृदा एवं जलवायु

यह बलुई दोमट एवं काली मिट्टी में उगाया जा सकता है। अधिक क्षारीय तथा अधिक अम्लीय मिट्टियों में इसकी खेती नहीं करनी चाहिए। सामान्य पी-एच मान (6-7) में अच्छी उपज प्राप्त होती है। क्ले दोमट-सिल्ट दोमट मृदा में कार्बनिक अंश अधिक होता है वह इसकी खेती के लिए उपयुक्त होती है। गर्म आर्द्र जलवायु $10-30^0$ सेल्सियस तापमान पौधों के अनुकूल होता है। उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय प्रदेशों में सिंचाई द्वारा इसकी खेती की जा सकती है।

बुआई/रोपण का समय

यह एक वर्षा सिंचित फसल है। इसका पौधरोपण का समय जुलाई एवं जड़ कटिंग रोपण जून से जुलाई तक 45×30/60×30 सें.मी. की दूरी पर किया जाता है। जड़ कटिंग द्वारा रोपण के लिए 100 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर जड़ का उपयोग किया जाता है। इसकी बीज की बुआई छिड़काव द्वारा भी की जा सकती है।

खाद एवं उर्वरक

औषधीय पौधों की खेती में पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए जैविक खाद का प्रयोग अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिए। खेत तैयार करते समय 20-25 टन प्रति हैक्टर गोबर की खाद तथा रोपण के बाद बुनियादी मात्रा के रूप में 10:60:30 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से एनपीके का प्रयोग किया जाता है। बाद में नाइट्रोजन की दो बराबर मात्रा का प्रति 10 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से नमीयुक्त मृदा में रोपण के 50 दिन एवं 170 दिन बाद प्रयोग किया जा सकता है।

लुप्तप्राय होती सर्पगंधा

सर्पगंधा जड़ों का अत्यधिक औषधीय उपयोग होने से अधांधुंध कटाई के कारण हमारे देश में औषधीय वनस्पति की यह महत्वपूर्ण प्रजाति वनस्पतियों की संकटग्रस्त श्रेणी में आ गयी है। भारत में इस प्रजाति की संख्या कम होने के कारण अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधन संघ ने सर्पगंधा को लाल आंकड़ा किताब (Red Data Book) में वनस्पतियों की संकटग्रस्त श्रेणी के तहत सूचीबद्ध किया है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में सर्पगंधा का संरक्षण बहुत जरूरी है। आज आवश्यकता है कि इसकी खेती के लिए किसानों को प्रोत्साहित किया जाए, क्योंकि इससे न केवल पौधे का संरक्षण होगा बल्कि किसानों को आर्थिक लाभ भी होगा। ऐसे औषधीय पौधों के संरक्षण के लिए राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड के साथ-साथ अन्य संस्थानों को भी सक्रिय रूप से इसकी खेती को प्रोत्साहित करना चाहिए।

सर्पगंधा के फूल

सिंचाई एवं निराई-गुड़ाई

बुआई के बाद इसे हल्की सिंचाई दी जाती है, जिससे अंकुरण प्रभावित न हो। पौधा स्थापित होने के बाद वर्षा के मौसम में कम सिंचाई तथा गर्मी के मौसम में 20 दिन के अंदर सिंचाई करनी चाहिए। बारिश के मौसम को छोड़कर वर्ष में एक से दो निराई-गुड़ाई की आवश्यकता होती है।

अंत:फसल

जहां पर सिंचाई की अच्छी सुविधा उपलब्ध हो, वहां सर्पगंधा के रोपण के प्रथम वर्ष में पंचोली जैसी फसल के साथ इसे उगाया जा सकता है। चूंकि सर्पगंधा के लिए छाया अच्छी होती है, इसलिए बगीचों या अन्य फसलों के साथ अंत:फसल के रूप में इसका रोपण किया जा सकता है।

कीट

इसमें रूट नॉट कीट पौधे का विकास रोक देता है, जिससे पत्ती का आकार कम हो जाता है। इसको नियंत्रित करने के लिए 25 कि.ग्रा. 3 जी कार्बोफ्यूरॉन या 20 कि.ग्रा. 10 जी फोरेट दोनों का प्रयोग प्रति हैक्टर की दर से करना चाहिए। दूसरा अनोमाला पोलिट नामक कीट अंकुरित पौधों को दो से तीन सें.मी. अंदर तक क्षति पहुंचाता है, इसलिए पौधा सूख जाता है। इसको नियंत्रित करने के लिए नर्सरी तैयार करते समय मिट्टी के साथ फोरेट के दाने को मिलाया जाता है।

रोग

इसमें लीफ स्पॉट जैसे रोग पाए जाते हैं। इससे पत्तियों की ऊपरी सतह पर गहरे भूरे रंग के तथा निचली सतह पर पीले-भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं, जिससे पत्तियां पीली होकर सूख जाती हैं। इसके नियंत्रण के लिए मानसून से पहले 0.2 प्रतिशत डायथेन एम-45 का छिड़काव करना चाहिए तथा महीने के अंतराल पर नवंबर तक छिड़काव करना चाहिए। दूसरा अल्टरनारिया टेनुईस नामक रोग पत्तियों पर होता है, जो पत्तियों के उदर भाग में छोटे भूरे या काले रंग के धब्बे पीले रंग में बदल जाते हैं। इसके नियंत्रण के लिए 10 लीटर पानी में 30 ग्राम ब्लाइटॉक्स मिलाकर छिड़काव करते हैं।

कटाई

इसकी कटाई 18-24 महीने के उपरांत दिसंबर से जनवरी के बीच की जाती है। फसल तैयार होने के बाद सतह से पौधे के ऊपरी भाग को काटकर जड़ों को बड़ी सावधानी से खोदकर बाहर निकालते हैं।

उपज

सर्पगंधा की जड़ की उपज मिट्टी की उर्वरता और फसल प्रबंधन पर निर्भर करती है। रोपण के दो से तीन वर्ष पश्चात इसकी सूखी जड़ उपज 22-33 क्विंटल प्रति हैक्टर तथा बीज उपज 8-10 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर प्राप्त की जा सकती है।

सस्योत्तर प्रबंधन

कटाई के पश्चात बड़ी व मोटी तथा पतली जड़ों को अलग-अलग करने के बाद पानी से धोकर, मिट्टी साफ करने के पश्चात 10-15 सें.मी. के टुकड़ों में काटकर छायादार स्थान में 8-10 प्रतिशत नमी तक सुखा देना चाहिए। सूख जाने के बाद नमी को रोकने के लिए पॉलीथीन, नॉयलान की थैली या पॉलीथीन गनी थैली में ठंडी एवं सूखी जगह में भंडारण किया जाता है, जिससे फफूंद जैसे रोग से बचाया जा सकता है।

खेती से आय

खर्च – 50,000 रुपये प्रति हैक्टर

लाभ – 1,60,000 रुपये प्रति हैक्टर

शुद्ध लाभ – 1,10,000 रुपये प्रति हैक्टर

भारत में सर्वोच्च बीस औषधीय पौधों के व्यापार में सर्पगंधा एक है। भारत से औषधीय पादप प्रजातियों का भी निर्यात किया जाता है। सर्पगंधा के संकटग्रस्त श्रेणी में आने के कारण इस अमूल्य जैविक संपदा का संरक्षण करना बहुत जरूरी है, जिससे आने वाली पीढ़ियां भी इसके गुणों से लाभान्वित हो सकें।

पौधे की विशेषताएं

यह द्विबीजपत्री तथा झाड़ीदार औषधीय पौधा है। इसकी ऊंचाई लगभग 75 सें.मी. से एक मीटर तक होती है तथा इसकी जड़ें 40 से 60 सें.मी. गहराई तक जमीन में जाती हैं। इसकी पत्तियां नीचे, नुकीले एवं ऊपर चमकीले हरे रंग के 3-4 गुच्छों में होती हैं। इस पर अप्रैल से नवम्बर के दौरान लाल एवं सफेद फूल गुच्छों में आते हैं। सर्पगंधा का तना एक मोटी छाल से ढका रहता है। इसके फल कच्ची अवस्था में हरे तथा परिपक्व होने पर बैंगनी तथा काले रंग में गोलाकार होते हैं, जो जून से अक्टूबर में तैयार होते हैं।

लेखकों से आग्रह

लेखक बंधु *खेती* पत्रिका के लिए अपने लेख और संबंधित फोटो, कवरिंग लैटर के साथ सिर्फ ई-मेल पर ही भेजें। ध्यान रखें कि फोटो जेपीजे फॉर्मेट में और उच्च रेज्योल्यूशन की हों। लेख में अधिकतम 1500 शब्दों की संख्या रखने का प्रयास करें। पाठक अपने सुझाव और प्रतिक्रियाएं ई-मेल के माध्यम से भेज सकते हैं। भेजने के लिए कृपया कृतिदेव 010 टाइप फेस का प्रयोग करें।

हमारा ई-मेल पता है :
khetidipa@gmail.com

–संपादक

भारत में आलू की प्रचलित किस्में

जगेश कुमार तिवारी, राजेश कुमार सिंह, विनय भारद्वाज, विनोद कुमार, सतीश कुमार लूथरा, नरेंद्र कुमार पाण्डेय और **स्वरूप कुमार चक्रबर्ती**
भाकृअप-केंद्रीय आलू अनुसंधान संस्थान, शिमला (हिमाचल प्रदेश)

आलू, विश्व में चावल, गेहूं और मक्का के बाद चौथी सबसे महत्वपूर्ण खाद्य फसल है। भारत में, भोज्य आलू के अलावा इसके प्रसंस्करण का भी महत्व बढ़ रहा है। वर्तमान में आलू प्रसंस्करण में कुल वार्षिक उत्पादन के लगभग 6 प्रतिशत हिस्से का उपयोग होता है, जबकि विकसित देशों जैसे नीदरलैंड और अमरीका में क्रमशः 55 और 60 प्रतिशत तक उपयोग होता है। आदिकाल से ही आलू का महत्व खाने में रहा है। आलू अत्यधिक विकसित और विकासशील देशों में एक आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण भोजन सामग्री है। इसमें उच्च उपज क्षमता एवं अनाज फसलों (धान, गेहूं आदि) की तुलना में प्रति यूनिट क्षेत्र में अधिक खाद्य ऊर्जा, प्रोटीन और सूखे पदार्थ पैदा होते हैं। साथ ही इसमें उच्च पोषक तत्व अर्थात उच्च प्रोटीन कैलोरी अनुपात (17 ग्राम प्रोटीन : 1000 कि.ग्रा.) है और यह आसानी से पचता है। संतुलित अमीनो अम्ल की उपस्थिति के कारण आलू का प्रोटीन बहुत उच्च जैविक मूल्य (98) का है। इसके महत्व के कारण, संयुक्त राष्ट्र ने वर्ष 2008 को *'अंतर्राष्ट्रीय आलू वर्ष'* घोषित किया था। विश्व खाद्य और कृषि संगठन ने आलू को 'भविष्य के लिए भोजन' के रूप में पहचाना है और 'एंडिस के छिपे हुए खजाने' के रूप में जाना जाता है। इस तरह आलू में वैश्विक स्तर पर भोजन और पोषण सुरक्षा दोनों को सुरक्षित रखने की क्षमता है।

कुफरी ज्योति

कुफरी बहार

कुफरी पुखराज

माना जाता है कि पुर्तगाली व्यापारियों ने पहले 16वीं सदी के अंत में या 17वीं सदी के प्रारंभ में भारत में आलू की शुरूआत की थी। यूरोप के शीतोष्ण वातावरण से भारत के उप-उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में आलू को अनुकूल बनाने में काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ा। इसीलिए देश की राष्ट्रीय कृषि प्रणाली के तहत विशेषकर केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान, शिमला की स्थापना की गयी और आलू अनुसंधान को बढ़ाया गया। इस क्रम में स्वदेशी बीज आलू बनाने की विस्तृत पद्धति का विकास किया गया, जिससे कि पहाड़ी एवं मैदानी क्षेत्रों में बीज का उत्पादन किया जा सके।

क्षेत्र और उत्पादन

आलू के उत्पादन में भारत विश्व में दूसरे स्थान पर चीन के बाद आता है। प्रमुख देशों में आलू के उत्पादन, क्षेत्र व उत्पादकता को सारणी-1 में दिया गया है, जबकि भारत के प्रमुख राज्यों का विवरण सारणी-2 में प्रस्तुत किया गया है।

आलू के लिए कृषि-पारिस्थितिकीय क्षेत्र एवं किस्मों का विकास

आलू में पहाड़ी और मैदानी क्षेत्रों के लिए विभिन्न कृषि-पारिस्थितिकियां हैं, जिनमें कि अलग-अलग समय पर बुआई होती है और विभिन्न प्रजातियों की आवश्यकतायें भी भिन्न होती हैं, जो सारणी-3 में वर्णित हैं।

किसी भी फसल के विकास के लिए उसके आनुवंशिक संसाधन की जानकारी अत्यंत आवश्यक है। इसे आकारिकी विविधता, जैविक रासायनिक और मॉलिक्युलर विश्लेषणों से ज्ञात किया जाता है। बायोसिस्टमैटिक्स और फसल के आनुवंशिक संसाधनों के बारे में ज्ञान, उनका कुशल संगठन और उपयोग प्रजनकों को किस्मों का विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण मदद करता है। सोलनम जीनस में आलू की 200-235 प्रजातियां पायी जाती हैं, इनमें से 73 प्रतिशत डिप्लोइड, 4 प्रतिशत ट्रिप्लोइड्स, 15 प्रतिशत टेट्राप्लोइड, 2 प्रतिशत पेंटालोलइड्स और 6 प्रतिशत

सारणी 1. विश्व में आलू का उत्पादन, क्षेत्र और उत्पादकता

क्र.सं.	देश	उत्पादन (मिलियन टन)	क्षेत्र (मिलियन हैक्टर)	उत्पादकता (टन/हैक्टर)
1.	चीन	95.51	5.64	16.92
2.	भारत	46.39	2.02	22.92
3.	रूस	31.50	2.10	14.99
4.	अमेरिका	20.05	0.42	47.15
5.	जर्मनी	11.60	0.24	47.41
6.	उक्रेन	23.69	1.34	17.64
7.	पोलैंड	7.68	0.27	27.76
8.	फ्रांस	8.08	0.16	47.97
9.	नीदरलैंड	7.10	0.15	45.66
10.	बंगलादेश	8.95	0.46	19.38
11.	यू.के.	5.91	0.14	41.92
12.	ईरान	4.71	0.15	29.67
13.	ऑस्ट्रेलिया	1.17	0.03	39.70
विश्व कुल		381.68	13.12	419.09

स्रोत: एफएओएसटीएटी 2014

सारणी 2. भारत के विभिन्न राज्यों में आलू का उत्पादन, क्षेत्र और उत्पादकता

राज्य	उत्पादन (मिलियन टन)	क्षेत्र (मिलियन हैक्टर)	उत्पादकता (टन/है.)
उत्तर प्रदेश	14879.34	607.32	24.5
पश्चिम बंगाल	12027.00	412.20	29.17
बिहार	6345.56	318.99	19.89
मध्य प्रदेश	3048.00	136.01	22.41
गुजरात	2964.10	98.20	30.18
पंजाब	2262.40	89.99	25.14
असोम	1706.04	99.18	17.20
हरियाणा	722.58	30.13	23.98
झारखंड	659.65	49.55	13.31
छत्तीसगढ़	600.93	38.92	15.44
कर्नाटक	589.12	44.16	13.34
उत्तराखंड	452.50	28.36	15.95
ओडिशा	268.85	15.81	17.00
हिमाचल प्रदेश	243.26	19.20	12.66
महाराष्ट्र	200.75	11.07	18.13
मेघालय	191.50	18.80	10.18
त्रिपुरा	159.47	9.04	17.64
राजस्थान	149.81	12.51	11.97
तमिलनाडु	130.56	6.10	21.40
जम्मू व कश्मीर	127.24	6.91	18.41
तेलंगाना	106.11	5.09	20.84
नगालैंड	65.10	4.82	13.50
सिक्किम	49.87	10.24	4.87
आंध्र प्रदेश	43.93	2.64	16.64
दिल्ली	12.28	0.44	27.90
केरल	1.80	0.09	20.00
मिजोरम	1.44	0.13	11.07
कुल	48009.19 (48.00 मि. टन)	2075.88 (2.07 मि. है.)	23.12

स्रोत: एनएचबी डाटाबेस 2014-15

कुफरी अशोका

कुफरी चन्द्रमुखी

कुफरी बादशाह

हेक्साप्लोइड होते हैं। मुख्यत: सामान्य व खेती युक्त आलू सोलनम टूबेरोसम (2n=4X=48) हैं, जिसकी दो उप-प्रजातियां हैं। पहला दीर्घ अवधि अनुकूलित और दक्षिणी चिली में पाया गया, जबकि दूसरा लघु अवधि

कुफरी सिंदूरी

कुफरी कंचन

कुफरी स्वर्णा

अनुकूलित और वेनजुएला के इंडीज क्षेत्रों एवं उत्तरी अर्जेंटीना में पाया गया। दुनिया भर में सबसे ज्यादा खेती आलू की किस्मों की जाती है।

बहुत पहले जब लंबे-दिनों वाली

सारणी 3. भारत के विभिन्न कृषि-पारिस्थितिकीय क्षेत्रों में खेती के लिए आलू की प्रजातियां

कृषि-पारिस्थितिकीय क्षेत्र	अवधि	प्रजातियां
उत्तर-पश्चिमी मैदानी	अगेती	कुफरी अशोका, कुफरी चन्द्रमुखी, कुफरी जवाहर, कुफरी ख्याति, कुफरी पुखराज
	मध्यम	कुफरी आनंद, कुफरी अरुण, कुफरी बादशाह, कुफरी बहार, कुफरी चिपसोना-1, कुफरी चिपसोना-3, कुफरी गरिमा, कुफरी गौरव, कुफरी ज्योति, कुफरी पुखराज, कुफरी पुष्कर, कुफरी सदाबहार, कुफरी सतलज, कुफरी सूर्या
पश्चिमी-सेंट्रल मैदानी	अगेती	कुफरी चन्द्रमुखी, कुफरी जवाहर, कुफरी ख्याति, कुफरी पुखराज,
	मध्यम	कुफरी आनंद, कुफरी अरुण, कुफरी बादशाह, कुफरी बहार, कुफरी चिपसोना-1, कुफरी चिपसोना-3, कुफरी फ्राईसोना, कुफरी गरिमा, कुफरी ज्योति, कुफरी पुखराज, कुफरी पुष्कर, कुफरी सदाबहार, कुफरी सतलज, कुफरी सूर्या
	पिछेती	कुफरी सिंधुरी
उत्तर-पूर्वी मैदानी	अगेती	कुफरी अशोका, कुफरी चन्द्रमुखी, कुफरी ख्याति, कुफरी पुखराज
	मध्यम	कुफरी अरुण, कुफरी बहार, कुफरी चिपसोना-1, कुफरी चिपसोना-3, कुफरी फ्राईसोना, कुफरी गौरव, कुफरी ज्योति, कुफरी कंचन, कुफरी लालिमा, कुफरी पुष्कर, कुफरी पुखराज, कुफरी सतलज, कुफरी सूर्या
	पिछेता	कुफरी सिंदूरी
पठारी	अगेती	कुफरी चन्द्रमुखी, कुफरी जवाहर, कुफरी ख्याति, कुफरी लौवकर, कुफरी पुखराज
	मध्यम	कुफरी बादशाह, कुफरी गरिमा, कुफरी ज्योति, कुफरी पुखराज, कुफरी सूर्या
उत्तर-पश्चिमी पहाड़ी	मध्यम	कुफरी गिरधारी, कुफरी गिरिराज, कुफरी हिमलिनी, कुफरी हिमसोना, कुफरी ज्योति, कुफरी शैलजा
उत्तर-पूर्वी पहाड़ी	मध्यम	कुफरी गिरधारी, कुफरी गिरिराज, कुफरी हिमलिनी, कुफरी ज्योति, कुफरी शैलजा, कुफरी मेघा
उत्तरी बंगाल व सिक्किम	मध्यम	कुफरी ज्योति, कुफरी कंचन
दक्षिणी पहाड़ी	मध्यम	कुफरी गिरधारी, कुफरी गिरिराज, कुफरी हिमलिनी, कुफरी ज्योति, कुफरी शैलजा, कुफरी स्वर्णा

मैदानी क्षेत्रः अगेती (70-90 दिन), मध्यम (90-110 दिन) और पिछेती (>110 दिन), पहाड़ी क्षेत्रः अगेती (100-110 दिन), मध्यम (110-120 दिन) और पिछेती (> 120 दिन)

कुफरी लवकर

कुफरी चिपसोना-1

कुफरी सूर्या

कुफरी आनन्द

यूरोपीय किस्में भारत में लायी गई थीं, तो उनके फूलों के व्यवहार तथा वायरल रोग की वजह से आलू का प्रजनन एवं किस्म सुधार, हमारे यहां के प्रजनकों के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती थी। सामान्यतया, आलू के फूल लंबे दिनों, मध्यम तापमान

कुफरी फ्राईसोना

कुफरी चिपसोना-3

कुफरी अरुण

और उच्च आर्द्रता में आते हैं। ऐसी स्थिति उत्तरी भारत की पहाड़ियों में ही उपलब्ध है, जहां आलू गर्मियों के दिनों में उगाया जाता है, जिसमें भरपूर वर्षा और उच्च

कुफरी गरिमा

आर्द्रता होती है। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, हिमाचल प्रदेश के केंद्रीय आलू अनुसंधान संस्थान (सीपीआरआई), शिमला के कुफरी (2500 मीटर) में एक नियमित आलू प्रजनन कार्यक्रम शुरू किया गया, ताकि देश में आलू प्रजनन कार्यक्रमों की बेहतर निगरानी की जा सके। हमारे देश में आलू की खेती के लिए विभिन्न प्रजातियों का विस्तृत विवरण सारणी-3 में दिया गया है।

आलू प्रजनन के उद्देश्य

- अर्ली बलकिंग, छोटे-दिन (मैदानों के लिए) और लंबे-दिन (पहाड़ियों के लिए) अनुकूलित और उच्च पैदावार।
- पिछेती झुलसा, वायरस, अगेती झुलसा, बैक्टीरिया विल्ट, वार्ट और कंद सड़न आदि जैसे रोगों का प्रतिरोध।
- सूखा, गर्मी, ठंड इत्यादि जैसे अवायवीय तनाव के लिए सहिष्णुता।
- पोषक तत्वों की उच्च उपयोग में दक्षता।

कुफरी गौरव

- चिप्स और फ्रेंच फ्राइज के लिए प्रसंस्करण गुण।
- कीटनाशक जैसे कि पीटीएम, एफिड-वैक्टर, सफेद ग्रब, हॉपर, आलू सिस्ट निमेटोड्स, रूट नेमेटोड्स का प्रतिरोध।
- गुणतापूर्ण पैतृकों का चयन और टीपीएस संख्या के विकास।
- उत्तरी बंगाल, बिहार और सिक्किम पहाड़ियों के लिए लाल कंद का विकास। ■

जनवरी-फरवरी में बागों की देखभाल

राम रोशन शर्मा[1] और हरे कृष्णा[2]

फलों के अच्छे और उच्च उत्पादन के लिए बगिया की देखभाल अति आवश्यक है। फलदार पौधों की बहुवर्षीय प्रकृति के कारण इनकी देखभाल तथा रखरखाव धान्य फसलों से भिन्न होता है। इसी संदर्भ में महत्वपूर्ण फलों में जनवरी व फरवरी में की जाने वाली प्रमुख कृषि क्रियाओं का संक्षिप्त विवरण लेख में प्रस्तुत किया गया है।

आम के बौर के गुच्छों को निकालें

आम का प्रबंधन

जनवरी के प्रथम सप्ताह में आने वाले बौर में फल नहीं लगते और ये अक्सर गुच्छे का रूप धारण कर लेते हैं। अतः ऐसे बौर को निकालकर नष्ट कर दें। आम में उर्वरक देने का यह सही समय है। नाइट्रोजन 500 ग्राम, फॉस्फोरस 500 ग्राम तथा पोटाश 700 ग्राम प्रति पौधा प्रयोग करें। इन्हें मिट्टी में मिलाकर हल्की सिंचाई कर दें। बागों की निराई-गुड़ाई एवं सफाई का कार्य करें।

फरवरी में थालों की गुड़ाई करें। फुदका या तेला (मैंगो हॉपर) के नियंत्रण के लिए थायोडॉन (0.2 प्रतिशत) तथा चूर्णिल आसिता रोग से बचाव के लिए केराथेन (20 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी में) का छिड़काव फरवरी के अंतिम सप्ताह में अवश्य करें। फरवरी में छोटे पौधों के ऊपर से छप्पर हटा दें। मिलीबग (गुजिया) के बचाव के लिए वृक्षों के तने पर पॉलीथीन की 3 फुट चौड़ी पट्टी बांध दें एवं पौधों की अपेक्षा जमीन पर किसी कीटनाशी (मेटासिस्टोक्स या रोगार) का छिड़काव वयस्क कीटों को मारने के लिए करें। ध्यान रखने योग्य बात है कि इन्हीं दिनों पौधों पर फूल आते हैं। यदि किसी भी कीटनाशी का प्रयोग फूलों पर किया गया तो संपूर्ण परागण न होने से कम फल लगेंगे।

केला

जनवरी के प्रथम एवं तृतीय सप्ताह में सिंचाई करें ताकि पाले से बचाव हो सके। पाले से बचाव के लिए किसी पलवार (मल्च) का प्रयोग करें तथा बागों में सायंकाल में धुआं भी करें। पौधों को यदि सहारा न दिया हो तो बांस के डंडे से सहारा प्रदान करें।

फरवरी के प्रथम तथा तृतीय सप्ताह में सिंचाई करें। केवल एक तलवारी पत्ती (भूस्तारी) को छोड़कर पौधे के आधार से निकलने वाली अन्य पत्तियों को काट दें। नाइट्रोजन की 60 ग्राम मात्रा प्रति 10 लीटर पानी में डालकर छिड़काव करें। बागों की निराई-गुड़ाई एवं सफाई का कार्य करें।

नीबूवर्गीय फलों की देखभाल

जनवरी में एक-दो सिंचाई करें तथा पाले से बचाने के हर संभव उपाय करें।

आम का बौर

[1]खाद्य विज्ञान एवं फसलोत्तर प्रौद्योगिकी संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012; [2]भाकृअनुप-केंद्रीय शुष्क बागवानी अनुसंधान संस्थान, बीछवाल, बीकानेर-334006

मूलवृंत तैयार करने के लिए बीज की बुआई पॉलीथीन में करें। प्रति पौधा 400 ग्राम नाइट्रोजन, 200 ग्राम फॉस्फोरस तथा 400 ग्राम पोटाश का प्रयोग 50 कि.ग्रा. गोबर की खाद के साथ करके हल्की सिंचाई कर दें। बागों की निराई-गुड़ाई एवं सफाई का कार्य करें।

फरवरी में फूल आने से कुछ दिनों पहले सिंचाई न करें अन्यथा सभी फूल झड़ सकते हैं। यदि फूलों या फलों में गिरने की समस्या अधिक हो तो 2-4, डी (10 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी में घोलकर) का छिड़काव करें। फल लगते समय पर्याप्त मात्रा में नमी बनाए रखें। नए पौधे तैयार करने हेतु फरवरी के अंत में कलिकायन (बडिंग) की जा सकती है।

अंगूर

उत्तरी भारत में अंगूर की काट-छांट के लिए जनवरी सबसे उपयुक्त है। काट-छांट के बाद कटे भाग पर नीले थोथे का घोल लगाना न भूलें। अंगूर में प्रथम वर्ष गोबर/कम्पोस्ट खाद के अलावा 100 ग्राम नाइट्रोजन, 60 ग्राम फॉस्फेट व 80 ग्राम पोटाश प्रति पौधा आवश्यक होता है। 5 वर्ष या इससे ऊपर यह मात्रा बढ़कर 500 ग्राम नाइट्रोजन, 300 ग्राम फॉस्फेट व 400 ग्राम पोटाश हो जाती है। फॉस्फोरस की सम्पूर्ण मात्रा तथा नाइट्रोजन व पोटाश की आधी मात्रा काट-छांट के बाद जनवरी में दें। उर्वरक डालने के बाद हल्की सिंचाई करें। कटी हुई शाखाओं से 30-40 सें.मी. आकार की कलमें तैयार कर लें। इन्हें 10-15 दिनों तक नम भूमि में दबाने के बाद पौधशाला में लगा दें। उत्तरी भारत में अंगूर के नए बाग लगाने का भी यही उपयुक्त समय है। फरवरी में चूर्णिल आसिता रोग से बचाव के लिए केराथेन (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव करें। बागों की निराई-गुड़ाई एवं सफाई का कार्य करें।

अमरूद

जनवरी में अमरूद के बागों में फलों की तुड़ाई का कार्य जारी रखें। तुड़ाई का सबसे अच्छा समय सुबह का होता है। फलों को उनकी किस्मों के अनुसार अधिकतम आकार तथा परिपक्व-हरे रंग (जब फलों की सतह का रंग गाढ़े से हल्के हरे रंग मे परिवर्तित हो रहा हो) पर तोड़ना चाहिए। इस समय फलों से एक सुखद सुगंध भी आती है। सुनिश्चित करें कि अत्याधिक पकें फलों को तोड़े गए अन्य फलों के साथ मिश्रित नहीं किया जाए। प्रत्येक फल को अखबार से पैक करने से फलों का रंग और भंडारण क्षमता बेहतर होती है। फलों को पैक करते समय उन्हें एक-दूसरे से रगड़ने पर होने वाली खरोंच से भी बचाना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि बक्से के आकार के अनुसार ही उनमें रखे जाने वाले फलों की संख्या निर्धारित हो। जनवरी में पत्तियों पर कत्थई रंग आना सूक्ष्म तत्वों की कमी के कारण होता है। अतः कॉपर सल्फेट तथा जिंक सल्फेट का 0.4 प्रतिशत की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें। फरवरी में आने वाले फूलों को तोड़ दें ताकि वर्षा ऋतु में आने वाली कम गुणवत्ता वाली फसल की अपेक्षा जाड़े वाली अच्छी फसल को न लेने के लिए फूलों की तुड़ाई के अतिरिक्त नेप्थेलीन

अमरूद

आंवला

उत्तरी भारत में आंवले के फलों की तुड़ाई जनवरी-फरवरी तक जारी रह सकती है। अतः इन क्षेत्रों में इस दौरान फलों से लदे वृक्षों को बांस-बल्ली की सहायता से सहारा देने की व्यवस्था की जानी चाहिए, ताकि शाखाओं को टूटने से रोका जा सके। अतः बिक्री की उचित व्यवस्था करें। इस दौरान फलों का भी विकास होता है, अतः सिंचाई की भी समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। परंतु ध्यान रहे कि तुड़ाई से 15 दिनों पूर्व सिंचाई रोक दी जाए ताकि फल समय से तैयार हो सकें। जिन क्षेत्रों में सिंचाई की समुचित व्यवस्था हो, उन क्षेत्रों में बसंत के आगमन के साथ ही पौध रोपण का कार्य फरवरी के दूसरे पखवाड़े से प्रारंभ किया जा सकता है, जोकि मार्च तक जारी रखा जा सकता है। साथ ही जिन क्षेत्रों में शीत ऋतु में पाले की संभावना हो, वहां गंधक के अम्ल (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव पूरे वृक्ष पर किया जाना चाहिए। जरूरत पड़े तो छिड़काव को दोहराएं। फरवरी में फूल आने का समय होता है जो नई पत्तियों के साथ आते हैं। इस समय सिंचाई न करें। आंवला के बाग में गुड़ाई करें एवं थाले बनाएं।

फलों से लदा आंवले का पौधा

आंवले के एक वर्ष के पौधे के लिए 10 कि.ग्रा. गोबर/कम्पोस्ट खाद, 100 ग्राम नाइट्रोजन, 50 ग्राम फॉस्फेट व 75 ग्राम पोटाश देना आवश्यक होगा। 10 वर्ष या इससे ऊपर के पौधे में यह मात्रा बढ़कर 100 कि.ग्रा. गोबर/कम्पोस्ट खाद, 1 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 500 ग्राम फॉस्फेट व 750 ग्राम पोटाश हो जाएगी। उक्त मात्रा से पूरा फॉस्फोरस, आधी नाइट्रोजन व आधी पोटाश की मात्रा का प्रयोग जनवरी से करें। बागों की निराई-गुड़ाई एवं सफाई का कार्य करें।

एसिटिक अम्ल (100 पीपीएम) का छिड़काव करें एवं सिंचाई कम कर दें। फरवरी के दूसरे पखवाड़े में छंटाई का कार्य शुरू किया जाना चाहिए, जोकि मार्च के प्रथम सप्ताह तक जारी रखा जा सकता है। पिछले मौसम में विकसित शाखाओं के 10-15 सें.मी. अग्र भाग को काट देना चाहिए। इसके अतिरिक्त, टूटी हुई, रोगग्रस्त, आपस में उलझी शाखाओं को भी निकाल देना चाहिए। छंटाई के तुरंत बाद कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (2-3 प्रतिशत) का छिड़काव अथवा बोर्डो पेस्ट का शाखाओं के कटे भाग पर लेपन करना चाहिए। बागों की निराई-गुड़ाई एवं सफाई का कार्य करें। अमरूद के नवरोपित बागों की सिंचाई करें।

बेर

बेर में चूर्णिल आसिता रोग अत्यधिक हानि पहुंचाता है। इससे बचने के लिए फरवरी में 0.2 प्रतिशत केराथेन का छिड़काव करें। 15 दिनों के अंतराल पर दोबारा यही छिड़काव करें। फरवरी के अंत में किसान बेर के पौधे भी लगा सकते हैं। फरवरी में बेर की अगेती किस्में पकने लगती हैं। इस फसल की तुड़ाई कर उचित बिक्री की व्यवस्था करें। बागों की निराई-गुड़ाई एवं सफाई का कार्य करें।

सेब तथा अन्य शीतोष्ण वर्गीय फल

शीतोष्ण वर्गीय फलों के बाग लगाने का सही समय जनवरी है। यदि किसी कारणवश दिसंबर में छंटनी न कर पाए हों तो जनवरी में इन फलवृक्षों की छंटाई अवश्य करें। छंटाई, सधाई प्रणाली को ध्यान में रखकर करनी चाहिए। कटे भाग पर चौबटिया लेप लगा देना चाहिए। बागों की निराई-गुड़ाई एवं सफाई का कार्य करें।

फलदार व छोटे पौधों में गोबर की खाद तथा फॉस्फोरसयुक्त उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। कीटों एवं रोगों की रोकथाम के लिए यदि दिसंबर में कोई छिड़काव न कर पाए हों तो जनवरी के प्रथम सप्ताह में यह कार्य संपूर्ण करें। बागों में जनवरी में उर्वरक देना भी न भूलें।

लीची

जनवरी में पाले से सुरक्षा के किसी उपाय का प्रबंध अवश्य करें। फरवरी में लीची में फूल आते समय सिंचाई न करें क्योंकि इससे फूलों के गिरने का डर रहता है। फूल आने से पहले एवं बाद में पानी की समुचित व्यवस्था करें। चूर्णिल आसिता रोग के प्रकोप से बचने के लिए लीची में संस्तुत रसायनों का प्रयोग करें। कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट फरवरी में प्रयोग करें। लीची के नवरोपित बागों की सिंचाई करें। बागों की निराई-गुड़ाई एवं सफाई का कार्य करें।

स्ट्रॉबेरी

जनवरी में स्ट्रॉबेरी के खेत में निराई-गुड़ाई करें। यदि पलवार न बिछाई गई हो तो वांछित पलवार जैसे पुआल या पॉलीथीन का प्रयोग करें। फलों में उच्च गुणवत्ता प्राप्त करने के लिए फरवरी के शुरू में जिब्रेलिक अम्ल (75 पी.पी.एम.) का छिड़काव करें तथा समय पर सिंचाई करते रहें। पत्तियों पर यदि धब्बे दिखाई पड़ें तो डाईथेन-एम-45 (2 ग्राम प्रति लीटर पानी) या बाविस्टीन (1 ग्राम प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करें। पहाड़ी क्षेत्रों में किसान स्ट्रॉबेरी को केवल नए पौधे तैयार करने के लिए लगाते हैं। अतः यदि फरवरी के अंत में पौधों पर फूल आ रहे हैं तो उन्हें तुरंत हटा दें। परंतु मैदानी भागों में किसान ऐसा न करें। मैदानी भागों में फरवरी में स्ट्रॉबेरी की फसल तैयार हो जाती है। इसे तोड़कर, 250 ग्राम के पैकेट में पैक कर बाजार भेजने की व्यवस्था करें।

स्ट्रॉबेरी के मन लुभावने वाले फल

फालसा

उत्तरी भारत में फालसे में जनवरी में गहन काट-छांट करनी चाहिए। काट-छांट के बाद कटे भागों पर बोर्डो लेप लगाएं। पौधों को उपयुक्त मात्रा में गोबर की खाद और उर्वरक दें। इन हिदायतों पर गौर करें और कार्यकलापों को सम्पन्न करें।

खजूर

जनवरी-फरवरी में खजूर के बागों में कई महत्वपूर्ण कार्य किए जाते हैं। इनमें कटाई-छंटाई, उर्वरकों का प्रयोग तथा परागण प्रमुख हैं। खजूर के पौधे एक बीज पत्रीय तथा एकल तना होने से शाखित नहीं होते हैं। अतः, व्याधिग्रस्त, सूखी, पुरानी, क्षतिग्रस्त पत्तियों को सर्दियों में हटा देना चाहिए। फल गुच्छों से सटी हुई पत्तियों के डंठलों से कांटे निकालना आवश्यक है, ताकि उनके आसपास परागण, फल गुच्छों की छंटाई, डंठल मोड़ना, रसायनों का छिड़काव, थैलियां लगाना एवं फलों की तुड़ाई आदि के कार्य सरलता से हो सकें। पत्ती को डंठल सहित जितना संभव हो सके मुख्य तने के समीप से हटाया जाना चाहिए, ताकि मुख्य तने की सतह को चिकना रखा जा सके। फल:गुच्छा अनुपात 1:6 रखने

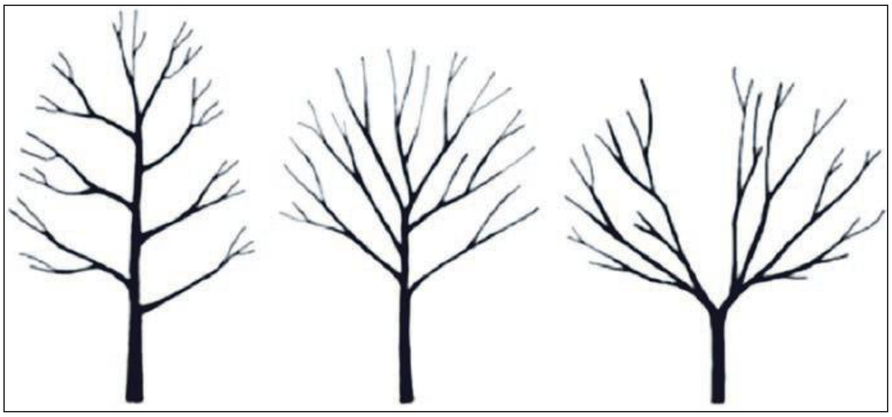

सेब में सधाई की प्रणालियां

खजूर

पर अधिक फल उत्पादन एवं उत्तम गुणवत्ता वाले फल प्राप्त होते हैं। अतः अच्छी फसल हेतु पूर्ण विकसित वृक्ष पर लगभग 70-100 पत्तियां होनी चाहिए। फॉस्फोरस (0.5 कि.ग्रा.) और पोटाश (0.5 कि.ग्रा.) की पूर्ण मात्रा और नाइट्रोजन की 50 प्रतिशत मात्रा (0.75 कि.ग्रा.) को फूल आने से तीन सप्ताह पहले दिया जाना चाहिए, जो विभिन्न किस्मों में जनवरी-फरवरी के दौरान होता है। तत्पश्चात, वृक्षों की सिंचाई की जानी चाहिए।

ठंड से बचाएं पपीता

पपीते को पाला अत्यधिक हानि पहुंचाता है। अतः जनवरी में पाले से बचाने के लिए पर्याप्त प्रबंध करें। पौधों

मिलीबग से ग्रस्त पपीते के फल

प्रभावित पपीते का पौधा

को पुआल से ढक दें तथा समय पर सिंचाई करते रहें। पुआल को फरवरी के अंत में हटा दें। 25 ग्राम नाइट्रोजन, 50 ग्राम फॉस्फोरस तथा 100 ग्राम पोटाश का प्रयोग फरवरी में प्रति पौधे की दर से करें। बागों की निराई-गुड़ाई एवं सफाई का कार्य करें। पपीते के नवरोपित बागों की सिंचाई करें। बागों की निराई-गुड़ाई एवं सफाई का कार्य करें।

कटहल का वृक्ष

खजूर में नर एवं मादा पुष्पक्रम अलग-अलग पौधों पर आतें हैं। अतः अच्छे उत्पादन के लिए कृत्रिम परागण किया जाता है। इसके लिए ताजे एवं पूर्ण रूप से खुले हुए नर पुष्पक्रमों को अखबार या पॉलीथीन की चादर पर झाड़कर एकत्रित कर लेते हैं। मादा पुष्पक्रमों को जो तुरंत खिले हों, परागकणों में डुबोए गए रूई के फाहों से दो-तीन दिनों तक लगातार प्रातःकाल परागित करें। नर पुष्पक्रमों की लड़ियों को काटकर खुले मादा पुष्पक्रम के मध्य में उलट कर हल्के से बांध दिया जाता है ताकि उनमें से परागकण शनैः-शनैः गिरते रहें। जनवरी-फरवरी में लेसर डेट मोथ कीट के लार्वा पराग कणों को खाकर नुकसान पहुंचा सकते हैं।

कटहल

यदि दिसंबर में खाद एवं उर्वरक न दिए गए हों तो जनवरी में यह कार्य पूर्ण करें। छोटे पौधों की पाले से रक्षा के उपाय करें। फरवरी के अंत में मिलीबग के प्रकोप से बचने के लिए पेड़ों पर आम की भांति पॉलीथीन की पट्टी लगाएं।

लोकाट

जिन क्षेत्रों में सिंचाई की समुचित व्यवस्था हो, उन क्षेत्रों में बसंत के आगमन के साथ ही पौध रोपण का कार्य फरवरी के दूसरे पखवाड़े से प्रारंभ किया जा सकता है, जोकि मार्च तक जारी रखा जा सकता है। एक मीटर गहरे और एक मीटर व्यास के गड्ढे की खुदाई का कार्य वास्तविक वृक्षारोपण से कम से कम एक महीने पहले किया जाना चाहिए। जिन क्षेत्रों में दीमक का प्रकोप हो, वहां क्लोरपाइरीफॉस 10 मि.ली. प्रति गड्ढे की दर से प्रयोग किया जाना चाहिए। प्रति पौध 25-30 कि.ग्रा. अच्छी तरह से सड़ा हुआ गोबर खाद दिया जाना चाहिए। इसके दौरान, शील्ड अथवा 'टी' कलिकायन विधि द्वारा पुरानी शाखा से कालिका लेने पर पौध-प्रवर्धन में भी अपेक्षित सफलता मिलती

लोकाट

है। उत्तर भारत के कुछ स्थानों पर जनवरी तक लोकाट में फूल आते हैं। फलों के सेट होने के बाद, 15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई की जानी चाहिए ताकि फलों का विकास हो सके। फरवरी में नाइट्रोजन उर्वरक की आधा खुराक दी जा सकती है ताकि फलों की अभिवृद्धि हो सके। यदि फल मक्खी का प्रकोप हो तो कीटनाशी इमिडाक्लोरपीड (0.5 मि.ली./प्रति लीटर) का छिड़काव फरवरी में 15 दिनों के अंतराल पर दो बार किया जा सकता है।

अगले महीनों (मार्च-अप्रैल) में भी बागों में बहुत कुछ करना है, क्या करना है जानिए अगले अंक में।

आवरण पृष्ठ II का शेष

खरबूजे की फसल

छंटाई के बाद खरबूजे बाजार में ले जाते हुए

कृषि विज्ञान केन्द्र का हस्तक्षेप

वर्ष 2012–13 के दौरान पॉली जिले में हेमावास गांव के बारानी किसानों के लिए टिकाऊ ग्रामीण आजीविका व खाद्य सुरक्षा के घटक के तहत के.वी.के. द्वारा एक प्रशिक्षण आयोजित किया गया। इसमें किसानों को ग्रीष्मकालीन बारानी खेती के बारे में 15 दिवसीय आवासीय प्रशिक्षण प्रदान किया गया। इसमें मुख्यत: खरबूजे की उन्नत खेती पर जोर दिया गया। यहां के किसान खरबूजे की खेती परपंरागत तरीके से करते थे। हेमावास गांव के बांध का लगभग 2500 हैक्टर भराव क्षेत्र है। इसमें लगभग 250 हैक्टर भूमि पर किसान ग्रीष्मकाल के समय खरबूजे की खेती करते हैं। परंपरागत विधियों से खेती करने पर किसानों को उत्पादन भी कम मिलता था तथा फल अधिकतर खराब हो जाते थे। मानसून के समय बांध भर जाता है, उसके बाद उसका पानी फरवरी–मार्च में सूख जाता है। इस बांध का पानी रबी की फसलों में सिंचाई के लिए उपयोग में लाया जाता है। किसानों की रुचि देखकर केवीके के वैज्ञानिकों ने वर्ष 2014–15 में खरबूजे के प्रदर्शन में किसानों को उन्नत किस्मों के बीज वितरित किए। बाजार की सूचना भी समय–समय पर मोबाइल संदेश के माध्यम से उपलब्ध कराई जाने लगी। इससे किसानों की आय में अधिक वृद्धि हुई। केवीके ने खरबूजे पर 160 प्रथम पंक्ति प्रदर्शन आयोजित किए। इसमें सभी वर्ग के छोटे–बड़े किसानों को सम्मिलित किया गया। असिंचित भूमि में खरबूजे की लगभग 115–120 क्विंटल प्रति हैक्टर पैदावार होती है। हेमावास गांव का पॉली एवं जोधपुर शहर के पास होने पर परिवहन का खर्चा बहुत ही कम होता है। मई–जून में खरबूजे की प्रति कि.ग्रा. दर 25–30 रुपये होती है। इससे किसानों को लाखों रुपये का लाभ मात्र 2 से 3 महीने में प्राप्त हो जाता है।

सारणी खरबूजे की फसल से होने वाले लाभ–लागत का ब्यौरा

क्र.सं.	विवरण	लागत/लाभ (रुपये प्रति हैक्टर)
ए.	**लागत प्रति हैक्टर**	
1	भूमि की तैयारी 2 मजदूर (350 प्रति मजदूर)	700 रुपये
2	बुआई के लिए गड्ढे खोदना, 2 मजदूर (एक कुदाल से गड्ढा बनाता है तथा दूसरा मजदूर बीज की बुआई करता है गड्ढे में) 350 रुपये प्रति मजदूर	700 रुपये
3	बीज की मात्रा एवं खर्चा 1.50 कि.ग्रा. 1500 प्रति कि.ग्रा.	2,250 रुपये
4	फसल सुरक्षा (जंगली जानवर व बाहरी लोग) 1 मजदूर 350 प्रति दिन (60 दिनों × 350 रुपये)	21,000 रुपये
5	अन्य खर्चा तुड़ाई, निराई–गुड़ाई, दवाइयों का स्प्रे आदि	24,500
	कुल लागत प्रति हैक्टर	49,150 रुपये
बी.	**लाभ प्रति हैक्टर**	
1	122.5 क्विंटल प्रति हैक्टर उत्पादन, असिंचित अवस्था	3,06,250 रुपये का सकल लाभ
2	शुद्ध लाभ प्रति हैक्टर (306250–49150)	2,57,100 रुपये का शुद्ध लाभ
	शुद्ध लाभ	2,57,100 रुपये कमाते हैं कृषक प्रति हैक्टर

लंबे समय तक खराब नहीं होती है। इसका रंग व आकार एक समान होता है, जो दिखने में आकर्षक होता है। फलों का औसत भार लगभग 1 से 1.5 कि.ग्रा. तक होता है, जो बिकने में आसान होता है। बांध के अंदर की भूमि का सही उपयोग होने के कारण जब किसान खाली होते हैं, उस समय खेत में काम करके अपनी आमदनी बढ़ा सकते हैं। गांव में कुल 250 हैक्टर भूमि पर लगभग 345 किसान खरबूजे की वैज्ञानिक खेती कर रहे हैं। बीज बुआई के बाद कृषक किसी प्रकार की बाहरी सिंचाई नहीं करते हैं। बांध की मृदा नमी को सोखकर रखती है। इससे पानी का वाष्पन बहुत कम होता है।

खरबूजे की खेती के सफल परिणाम

केवीके द्वारा प्रदान की गई सहायता व जानकारी से बांध के कमांड क्षेत्र से हुए कुल उत्पादन में से 1575 टन फल जोधपुर जोन के विभिन्न शहरों जैसे फालना, ओशिया, बिलाड़ा, रामपुरा, शेरगड़, फलोदी, पॉली, सुमेरपुर, बाली, रोहट, जैयतारण, रायपुर, रानी, देसुरी, अजमेर, सिरोही एवं मांउट आबू में भी भेजे गए। इनके स्वाद और गुणवत्ता के कारण उचित भाव मिलता है। इसके साथ ही 10 टन घरेलू उपभोग भी हुआ। इस गांव के बांध की पेटाकास्त भूमि का गर्मी में सही उपयोग करके गांव के सभी किसान खुश हुए। गर्मी में यहां के प्रतिकूल वातावरण के विपरीत स्थिति में तथा खारे पानी की वजह से यहां फसल बहुत कम हो पाती है। रबी में बांध खाली होता है तो दीपावली के आसपास गेहूं की यहां असिंचित खेती होती है। इससे किसानों को खाने के लिए अनाज मिलता है। पशुओं को चारा यहां से भी प्राप्त होता है। ■

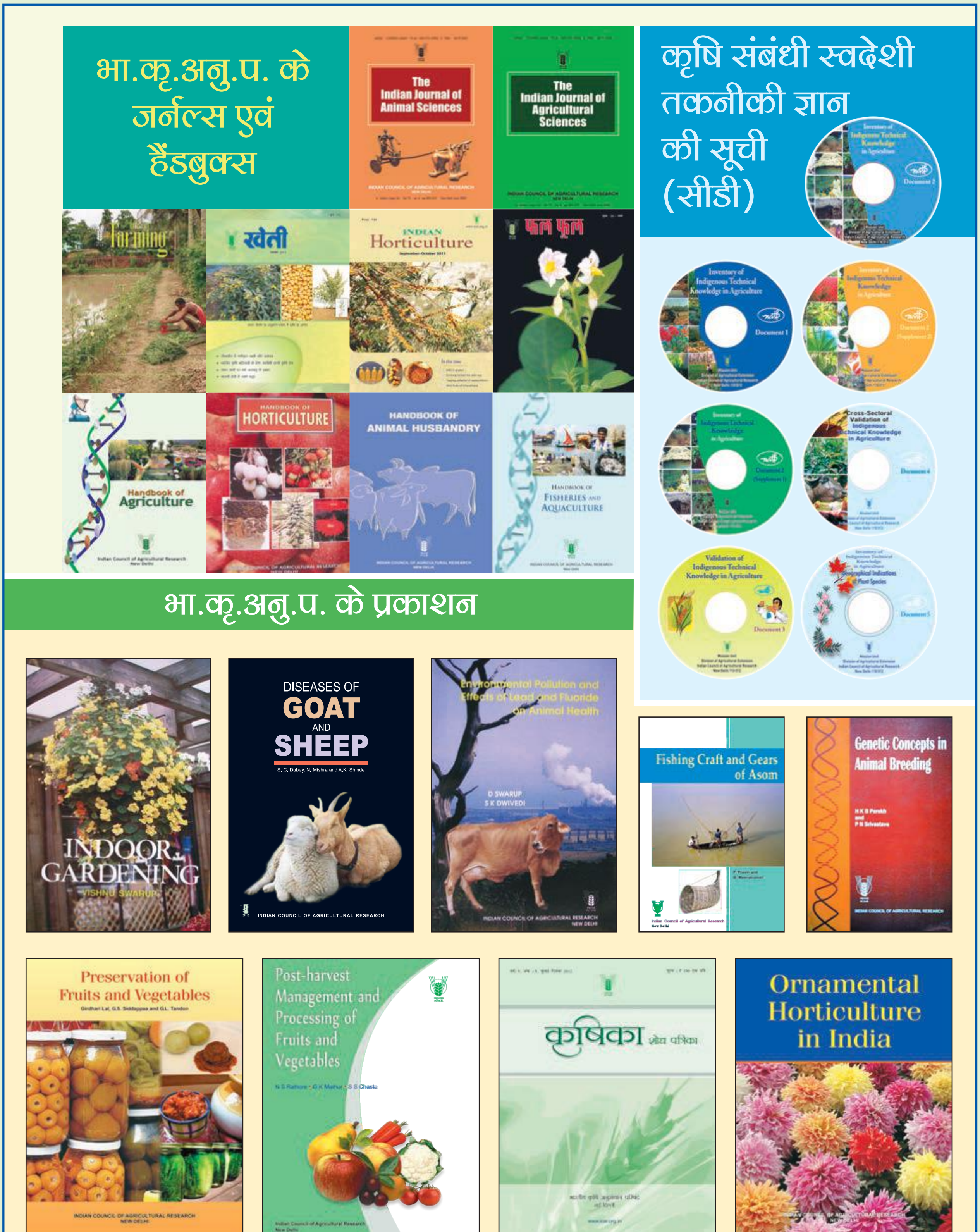

संपर्क
व्यवसाय प्रबंधक
कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन-I, पूसा, नई दिल्ली 110 012
टेलीफैक्स : 91-11-25843657; ई-मेल : bmicar@icar.org.in
वेबसाइट : www.icar.org.in

भाकृअनुप
ICAR

डा. एस. के. सिंह, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स चन्दु प्रेस, 469, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एस्टेट, दिल्ली 110 092 से मुद्रित। सम्पादक: अशोक सिंह